श्री

नाट्यसम्भव

रूपक

जिसे

साहित्यानुरागी रसिकजनों के मनोविनोद के लिये

प्रणयिनीपरिणय, लावण्यमयी, प्रेममयी, कनककुसुम, सुखशर्वरी, हृदयहारिणी, लवङ्गलता, राजकुमारी, स्वर्गीयकुसुम, लीलावती, तारा, चपला इत्यादि उपन्यासों के रचयिता

श्रीकिशोरीलालगोस्वामी ने

बनाया

और

बाबू देवकीनन्दन खत्री ने

प्रकाशित किया।

काशी।

लहरी प्रेस में प्रथम बार मुद्रित हुआ।

१९०४ ई.

मूल्य ।=) महसूल /)

इस

"नाट्यसम्भव"

रूपक

—का—

"कापीराइट"

निज मित्र—

बाबू देवकीनन्दनजी खत्री

को

सहर्ष अर्पित किया।

श्रीकिशोरीलालगोस्वामी
ज्ञानवापी—बनारस।

नाट्यसम्भव रूपक के
पात्र।

स्त्री—

सरस्वती—वागीश्वरी देवी।

ऋद्धि—सरस्वती की चेरी।

सिद्धि— „ तथा।

शची—इन्द्राणी।

उर्वशी, मेनका, रंभा, तिलोत्तमा, घृताची आदि अप्सराएं।

दैत्यनारियां इत्यादि।

पुरुष—

बृहस्पति—देवताओं के गुरु।

नारद—देवर्षि।

भरत—सङ्गीत और साहित्य के आचार्य्य।

दमनक—भरतमुनि का चेला।

रैवतक— „ तथा।

इन्द्र—स्वर्ग का राजा।

विद्याधर, किन्नर, सिद्ध, यक्ष, गुह्यक, विश्वेदेव, अग्नि, वरुण, धन्वन्तरि, कुवेर, सूर्य, चन्द्रमा, अश्विनीकुमार, कार्त्तिकेय आदि देवगण।

माल्यवान—नन्दनवन का माली।

पिंगाक्ष—इन्द्र का द्वारपाल।

बलि—दैत्यों का राजा।

नमुचि—बलि का दूत।

वज्रदंष्ट्र—बलि का द्वारपाल इत्यादि।

भूमिका।

सन् १८९१ ई० में जब हम द्वितीय बार कलकत्ते गए थे, इस "नाट्यसम्भव" रूपक का प्रादुर्भाव उसी समय कलकत्ते में ही हुआ था। वह भी कैसा अपूर्व समय था और उचितवक्ता सम्पादक पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र, सारसुधानिधि सम्पादक पण्डित सदानन्द मिश्र, धर्मदिवाकर—सम्पादक पण्डित देवीसहायजी मिश्र आदि विद्वान मित्रवरों के सत्संग से जो आनन्द प्राप्त हुआ था, वह फिर कई बार कलकत्ते जाने पर न मिला। उन्हीं दिनों प्रायः 'नाटक' देखने भी हमलोग जाया करते थे। सो एक दिन 'स्टार' थियेटर में एक ऐसी अच्छी नक़ल देखने में आई कि जो चित्त में चुभसी गई और उसीके मूल पर हमने इस "नाट्यसम्भव" रूपक को लिखा, जिसे उपर्युक्त मित्रमण्डली ने सराहा और पसन्द किया।

फिर इस रूपक की खबर विहार प्रान्त के सूर्यपुराधिपति राजा राजराजेश्वरीप्रसादसिंह बहादुर ने सुनी और जब वे आरा में आए तो उन्होंने हमें बुला कर इस 'रूपक' को आद्यन्त सुना। इसपर वे बहुतही मुग्ध हुए और इसकी कापी उसी समय बाबू रामदीनसिंह के हवाले की। किन्तु खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि जब उक्त राजा साहब स्वर्ग सिधार गए और नाटक खड्गविलास प्रेस सेवन करता रहा, तो हम इसकी कापी वहां से ले आए और बस्ते में बांध कर पटक दिया।

आज बहुत दिनों पीछे यह 'रूपक' मित्रवर बाबू देवकीनन्दनजी खत्री के द्वारा छपकर हिन्दीरसिकों के सन्मुख उपस्थित होता है और हम भी इसे स्वर्गीय राजा राजराजेश्वरी प्रसादसिंह बहादुर की अमर आत्मा को समर्पित कर भूमिका समाप्त करते हैं।

श्रीकिशोरीलालगोस्वामी

काशी।

श्रीहरिः।

श्रीश्रीवाग्देवतायै नमः।

नाट्यसम्भव।

रूपक।

प्रस्तावना।

(नाट्यशाला का परदा उठता है)

दोहा।

जग सिरजै, मेटै, भरै, सदा नाटकाकार।
सूत्रधार संसार को मंगलमय निरधार॥

सूत्रधार। (नांदी पढ़कर) अहा ! आज हमारा कैसा सुप्रभात है कि वहुत दिनों पर फिर नाटक खेलने के लिए बुलाए गए। हा ! एक दिन वह भी था कि रात दिन इस काम के मारे सांस नहीं मिलती थी और एक दिन यह भी है कि खाली हाथ घर वैठे वरसों वीत जाते हैं, पर नाटक खेलने के लिए कोई पूछता-ही नहीं। इससे केवल हिन्दी भाषा कीही अवनति नहीं होती, वरन संग २ हिन्दूसमाज का भी अधः पतन हुआ जाता है। चिल्लाते २ थकगए तौ भी ऐसा

पारा पिलाया है कि किसीके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। (चारों ओर देखकर) संसार में जब जब जिस २ देश की उन्नति हुई, तब तब उस उस देश के साहित्य के कारण। पर हाय ! कैसी लज्जा की बात है कि जिस साहित्य के प्रधान अङ्ग नाटक से यह देश एक समय उन्नति की सीमा लांघ कर भूमंडल के सभी देशों का शिक्षागुरू बना था, आज उसीकी ऐसी दुर्दशा हो और वहीं के निवासी आंखों पर पट्टी बांधे हुए रसातल को चले जाते हों ! (खेद नाट्य करता है) सभी कोई इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार करैंगे कि यह अलौकिक गुण नाटकही में है कि जिसके द्वारा अनेक विभिन्न समाज औ विभिन्न प्रकृति के लोगों का मन एक रसमय हो जाता है। चाहे कोई कैसीही प्रकृति का क्यों न हो, पर नाटक से उसकी मति जिधर चाहे उधर फेरी जा सकती और जैसा चाहे वैसा काम निकाल लिया जा सकता है। (घूम कर) और देखो, नाटक से बढ़कर कोई ऐसा दूसरा उपाय नहीं है, जिससे सर्वसाधारण को सामाजिक-दशा का वर्त्तमान चित्र दिखाकर उसका पूरा पूरा सुधार किया जाय।

किन्तु हा ! मूढ़ता से जकड़े हुए हिन्दुओं के करम में न जाने अभी कौनसा दुःख भोगना बदा है कि अपनी

और देश तथा समाज की दुर्गति देखकर भी नहीं देखते। यह सब मूर्खता के लक्षण नहीं तो क्या हैं? (ठहर कर) अरे हम फिर वही पुराना पीटना पीटने लगे और! यह तो भूलही गए कि आज हम कौनसा रूपक खेलने के लिए आए हैं? अच्छा! पारिपार्श्वक को बुलाकर पूछैं। (घूम कर और नेपथ्य की ओर देख कर) अरे भावक !!!

(नेपथ्य में)

आर्य्य। हम आए।

पारिपार्श्वक। (आकर) कहो क्या विचार है?

सूत्रधार। परम माननीय संगीत और साहित्य विशारद सूर्य्यपुराधिपति श्रील श्रीयुक्त श्री राजा राजराजेश्वरी प्रसादसिंह साहब बहादुर ने आज हमें नाटक खेलने की आज्ञा दी है।

पारिपार्श्वक। यह तो हम भी जानते हैं।

सूत्रधार। तो फिर कौनसा रूपक दिखलावैं?

पारिपार्श्वक। वाह! ऐसी जल्दी भूल गए? सुनो श्रीमान् राजा साहब ने "नाट्यसम्भव" रूपक खेलने के लिए अनुमति दी है, कि जिसको देखकर लोग इस विद्या के महत्व को अच्छी तरह समझैं और इसकी ओर झुककर अपने देश तथा समाज की उन्नति करैं।

सूत्रधार। तुमने ठीक कहा। अहाहा श्रीमान् राजा साहब

का विचार कैसा उदार और प्रशंसनीय है? परन्तु यह रूपक किसका बनाया है?

पारिपार्श्वक। उन्हीं श्रीमान् के परमस्नेही हिन्दी भाषा के कवि तथा लेखक पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी जी ने रचा है।

सूत्रधार। (हर्ष से) क्यों न हो! जैसे सुयोग्य और गुण-ग्राही श्रीमान् राजा साहब हैं वैसेही रसिक और सुलेखक श्रीगोस्वामीजी भी हैं। बस फिर क्या पूछना है? सोना और सुगन्ध! (घूमकर) इसमें सन्देह नहीं कि इसका अभिनय देखकर रसिकजनो का मन मोहित होगा और इस विद्या में लोगों की श्रद्धा भी होगी (सामने देखकर) अहा! देखो श्रीमान् राजा साहब महोदय अपने दलबल सहित रङ्गभूमि में पधारे, तो चलो हमलोग भी अपना २ काम देखें।

पारिपार्श्वक। हां! चलो। अब विलम्ब केहि काज!

(दोनों गए)

इति प्रस्तावना।

श्रीहरिः ।

नाट्यसम्भव ।

रूपक ।

विष्कम्भक ।

(रंगभूमि का परदा उठता है)

स्थान नन्दनवन ।

(आकाश मार्ग में प्रकाश होता है और वीणा लिए गाती हुई दो अप्सरा आती हैं)

पहिली अप्सरा । (राग जोगिया)

जयजय रुकमिनि रमा सिवानी ।

दमयन्ती सावित्री सीता सकुंतला सुररानी ॥

जगजननी अघहरनि करनिमहि मङ्गल सब सुखदानी ।

जासु नाम गावत कुलबाला भुवनविदित गुनखानी ॥

दूसरी अप्सरा । (राग गौरी)

जयजय सची स्वर्ग की रानी ।

सती सिरोमनि पतिअनुरागिनि तीनहुं लोक बखानी

जासु मेरुसों अचल पतिव्रत गावत मुनि विज्ञानी ।

सतीमंडली माहिं दिवानिसि जो सादर सनमानी ॥

दोनों । (एक सङ्ग) (राग ईमन कल्यान)

अहा यह नन्दन वन सुखदाई ।
अखिल भुवन-सुखमा-समूह लहि पाई बहुरि बड़ाई ॥
जहां विहार करन करन जन कोटिन करत उपाई ।
पै पावत कोऊ या सुखकों जनम अनेक गवांई
यहैं सदा रितुराज विराजत छाजत मदन सहाई ।
सीतल मन्द सुगन्ध पौन जहं हरत खेद समुदाई ॥
कंचन भूमि रतनमय तरवर नव पल्लव उमगाई ।
झुके भूमि भरि भारनसों निज संपति गरब मिटाई ॥
चहुं मंदार उदार कल्पतरु चंदन सुरभिबढ़ाई ।
पारिजात संतान बितानिनि सोभित अति छबि छाई ॥
फूलेफले अघाय सबै तरु नख सिखलों सरसाई ।
भरे लेत मन मानो भोरिन देववधू नियराई ॥
बिकसीं लता सुमन-मन-मोहनि तरुन तरुन लपटाई ।
मधुकर-निकर झुंड झनकारनि रस बस रहे लुभाई
नाचैं मोर मोद मनमाने कोकिल कल किलकाई ।
विहरत हरत चित्त पंछीगन चहचहात हरखाई ।
कंचन हरिन किलोल करत बहु साखामृग अधिकाई ॥
मधुर बैन बोलत सब मिलिजुलि मन नहिं नेक सकाई
रतन जड़ित सोपान मनोहर देखत बनत निकाई ।
सुधा सरोवर अति छबि छाजत निर्मल नीर बहाई ॥
कनक कंज कल्हार कुसेसय इन्दीवर मनभाई ।

करत केलि कारंडव कलरव हंस मधुप सचुपाई ॥
तरल तरङ्ग रङ्ग बहु भांतिन दरसावै निपुनाई।
विहरैं विबुध वारवनितनि सँग अङ्ग २ अरुझाई॥
सोई सोभासदन सुहावन आँनद करन सवाई।
लगै आज सुनो केहि कारन हिय जनु खेद जताई॥

(नेपथ्य में)

अरे ! यहां पर कौन इस समय गा रहा है? एं ! हमारे देवराज महाराज, महारानी शची देवी के विरह में ऐसे व्याकुल होरहे हैं और तुम लोगों को गाना सूझा है? (दोनों डरकर इधर उधर देखने लगती हैं और हाथ में सोने का आसा लिए नन्दन वन का माली आता है)

माली। अरी मतवालियो ! इस वन के अधिकारी विद्यावसु गन्धर्व ने आज्ञा दी है कि जबतक महारानी शची देवी आकर इस वन की शोभा नहीं बढ़ातीं, तबतक कोई यहां पर विहार करने या गाने न पावै। सावधान, सावधान !!

दोनो अप्सरा। हे माल्यवान ! इस आज्ञा की चरचा हमलोगों के कानों तक नहीं पहुंची थी, पर अब ऐसा अपराध कभी न होगा।

माली। अच्छा २ (गया)

पहिली अप्सरा। (धुन बिरहनी)

याही कारन आज उदासी ह्यां छाई है।

याही सों सूनो लागत वन समुदाई है ॥

दूसरी अप्सरा ।

हाय चली ज्यों गई सकल सोभा या थल की ।
सुनत स्रौन यह वज्र वैन छाती दुरि दल की ॥

पहिली अप्सरा ।

दीख परैं नहिं वनितन संग देवन के परिकर ।
सबै सोक में सने सची लेगए असुर घर ॥

दूसरी अप्सरा ।

क्यों न करैं उद्धार मारि असुरन को रन में ।
करैं विहार बहोरि वारवनितन सों वन में ॥

पहिली अप्सरा ।

ह्वै है सबै संजोग यहै दुरदिन के बीते ।
फिरि हैं सुमन सनेहसने लहि मन के चीते ॥

दूसरी अप्सरा ।

चलो जाइके करैं उमाआराधन हम सब ।
ह्वै सुख सूरज उदै, मिटै दुख निसि को तम अब ॥

(नेपथ्य में)

हाथ में वज्र लेकर असुरकुल संहार करने वाले महाराजाधिराज देवराज माधवी कुंज की ओर आते हैं । सब कोई हटो, बचो, सावधान हो जाओ ।

(दोनों कान लगाकर सुनती हैं)

पहिली अप्सरा । सखी ! महाराज इसी ओर आरहे हैं

अब चलो यहां से !

दूसरी अप्सरा। हां बहिन ! चलो हमलोग भी चलकर भगवती की पूजा करें।

(दोनों गई)

परदा गिरता।

इति विष्कम्भक।

पहिला दृश्य।

(रङ्गभूमि का परदा उठता है)

स्थान नन्दनवन—माधवीकुंज।

(उदासीन वेश बनाये आगे २ इन्द्र औ पीछे २ सोने का आसा लिए प्रतिहारी आता है)

इन्द्र। (घूम कर) अहा ! यह किसने कानों में अमृत की बूंद टपकाई ? (हूं सुख सूरज उदै इत्यादि फिर से पढ़कर) हा ! क्या वह दिन जल्दी आवेगा ? हे प्यारी पुलोमजे ! कब तुम्हारी माधुरी मूर्त्ति का दर्शन होगा ? प्रिये ! तुम्हारे वचनामृत के प्यासे इन कानों की कब तृप्ति होगी ? अरे निर्दई विधाता ! हमने तेरा क्या बिगाड़ा था जो तूने बैठे बैठाये बैर बिसाह कर

प्रियतमा के विरहरूपी वज्र से हमारे मनोमुकुर को चकना चूर कर दिया ! आह ! यह किस जन्म के पापों का फल भोग रहे हैं ? हे दुर्दैव ! जो तुझे यही सूझा था तो फिर हमें अखिललोकवांछित स्वर्ग के सिंहासन पर क्यों बैठाया ? हा !

प्रतिहारी । महाराज की जय होय ! स्वामी यही माधवी कुंज है । आप यहां पर विराजैं ।

इन्द्र । (घूम कर और प्रतिहारी को देखकर) अरे पिंगाल ! तू निकुंज के द्वार पर बैठकर पहरा दे कि जिसमें कोई यहां आकर विघ्न न करने पावै । तबतक हम इसी सूनी लता से अपना जी बहलावैं ।

पिंगाल । जो आज्ञा (गया)

इन्द्र । (घूम कर) हा ! प्यारी के बिना आज यह माधवी कुंज सांपिनसी डसे लेती है । (पन्ने की शिला पर बैठकर) और यह पन्ने की शिला आज कांटे की भांति शरीर में चुभ रही है । (ठहर कर) हाय ! हमने जो यक्ष को* शाप देकर उसकी प्रणयिनी को असह्य विरह की यातना दी थी, उसीकी हाय के भभूके से हमारा हृदय आज भुना जाता है । (लम्बी सांस लेकर) अरे ! यह मूर्ख अविवेकी पामरों का

* महाकवि कालिदास ने इसी यक्ष की पौराणिक कथा लेकर मेघदूत काव्य बनाया है ।

प्रलाप मात्र है कि "संसार के समस्त भोग विलासादि सुखों का एकमात्र स्वर्गही आकर है और उस स्वर्ग के नायक परमप्रतापशाली देवेन्द्र की सौभाग्य लक्ष्मी से तीनो लोक प्रकाशित और गौरवान्वित है" इत्यादि। तो अब वही लोग आंख पसार कर देखें कि उसी बड़भागी देवेश की आज कैसी दुर्दशा हो रही है? (उठकर इधर उधर घूमता है) हा! आंखों के आगे अंधेरा हुआ जाता है, निकुंज के पक्षियों का चहचहाना कानों में बज्र की भांति गूंजता है, हाथ पांव सन्न और अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल हुए जाते हैं, हृदय सूना होगया और प्राण ओठों पर नाच रहे हैं। (चारों ओर देखकर) आह! जिस स्वर्ग में सदा शोभादेवी क्रीड़ा किया करती थीं, आज वहीं कैसी घटा कीसी उदासी छागई है! जहां सदैव आनन्द कीसी सरिता बहा करती थी, वहां पर आज भयंकर ज्वालमालासी लपट फैल गई है। जहां शोक दुःख सन्ताप का नाम तक न था, आज वहीं इन लोगों ने अपना अड्डासा जमा रक्खा है (ठहर कर) और यह बात सोचने से तो कलेजा फटा जाता है कि हत्यारे असुरों ने न जाने प्राणप्रिया की कैसी दुर्दशा की होगी! हा! हमारे इस जीने पर कोटि कोटि धिक्कार है!!!

दोहा ।

छिन छिन बीतै मोहि जुग, तुव विन चतुर सुजान ।
विरहानल छाती दहै, प्रान लगे बिलखान ॥

सोरठा ।

कैसे रहिहैं प्रान, प्रिया तिहारे दरस विन ।
सूनो लगत जहान, इक तो विन मनभावती ॥

(विरहनाट्य करता हुआ गाता है)

राग मारू ।

प्यारी तो विन विकल प्रान मम तलफत हैं इत ।
सूनो लागै मनिमंदिर अब चितवों जित तित ॥
छाई आंसुन बूंद सदा इन नैनन माहीं ।
किये कोटि उपचार धरै हिय धीरज नाहीं ॥
विकल प्रान अकुलान लगे या तन मैं दुखसों ।
हाय भैंट ह्वै है बहोरि मोकों कब सुखसों ।
या नन्दनवन माहिं दुखी मानस सबही को ।
पै जानत नहिं भेद कोऊ लहि मेरे जी को ॥
हरै कौन जग माहिं अहो ! गम्भीर पीर को ।
विना तिहारे चैन परै कैसे सरीर को ॥
अब नहिं ढाढ़स बंधे हिये मैं प्यारी तो विन ।
कैसे कटि हैं हाय दुसह दुखदाई दुरदिन ॥
अब तो कोऊ भांति हमैं प्यारि मरिबो है ।
जैसे बने प्रेम-परिपाटी अनुसरिबो है ॥

विरह-वज्र की मार सहौं कैसे हिय ऊपर ।
कौन अहै, दुख सहै अहो ! या भांतिन भूपर !!?
गई सबै सोभा हेराय नन्दनवन केरी ।
छाई बनि चिकराल कालसी घटा घनेरी ॥
मानत नाहिं मनाये कैसेहूं जिय मेरो ।
आंखिन आगे रह्यो घेरि चहुं ओर अंधेरो ॥
कोऊ दीखत नाहिं तोहि सम प्यारी दस दिक ।
अबही लों जीवत हौं, तो बिन मोकों धिक धिक ॥
करौं प्रतिज्ञा वज्रधारि कर अब हम दृढ़तर ।
जारि असुरकुल, मारि मूढ़, संहारि दनुजवर ॥
करौं बेगि उद्धार, याहि हाथन सों प्यारी ।
जौं चितवैं करि नेह विलोचन सों त्रिपुरारी ॥

(शिला पर बैठकर आंख मूंदे हुए "करौं बेगि उद्धार" इत्यादि फिर पढ़ता है)

(नेपथ्य में)

राग खम्माच ।

जय जय अखिल भुवन की बानी ।
कवि की रसना माहिं जासु को मन्दिर वेद बखानी ॥
अतुल रूप, गुन अमित, बिस्व में जाकी छटा समानी ।
जेहि लहि पुनि कछु करैं आस नहिं सुर, नर, मुनि बिज्ञानी ॥

(इन्द्र चौंक कर इधर उधर देखता है और सरस्वती का गुन गाते हुए भरतमुनि आते हैं)

इन्द्र। (उठकर और आसन देकर) मुनिवर को प्रणाम है।

भरत। (बैठकर) हे स्वर्गलोक के शासन करनेवाले पाक-शासन! भस्म रमानेवाले भवानीपति भूतनाथ भग-वान तुम्हारा कल्याण करैं। ऐं सुरेश! तुम्हारा प्रसन्नमुख आज इतना मलिन क्यों होरहा है? बैठो तो सही।

इन्द्र। (बैठकर) मुनिवर! हमारा अपराध क्षमा कीजिए, क्योंकि इस समय हम ऐसी घोर चिन्ता में डूबे हुए हैं कि अच्छी तरह आपका आदर सत्कार नहीं कर सकते। हा! अपनी दुःख से भरी कहानी हम कहां-तक सुनावैं, आपसे क्या कुछ छिपा है?

भरत। हे इन्द्र! तुम्हारे ऐसे धीर वीर पुरुष को ऐसा अधीर होना कदापि उचित नहीं है।

(धुन विरहनी)

इन्द्र। कहा कहौं वनि परै न भाखे यह दुखभरी कहानी।

भरत। पै धीरज उर धरैं, भए दुःख जे नर हैं विज्ञानी॥

इन्द्र। विरहानल यों हियो जरावै समय पाय मनमानो।

भरत। कासों कहा वसाय सबै जग विधि के हाथ विकानो॥

इन्द्र। नैन नीर बरसावैं निस दिन वपु वरसात बनाए।

भरत। ह्वैहै बहुरि वसन्त, गाइहै कोकिल कल मन भाए॥

इन्द्र । बिकल प्रान अकुलान लगे इत राखि सकै किमि कोऊ ।
भरत । मिटिहैं सब सन्ताप बेगि, बहु भांतिन सों सुख होऊ॥
इन्द्र । मिलै न मांगी मौत भए दुख बिधि कृत मेटै को जग।
भरत । याहीसों बुध बिपति परे, गहि चलैं सुगन धीरज मग॥
इन्द्र । दोहा ।

प्रियाविरह व्याकुल अतिहि, मैं इत भयो बिहाल ।
पै उत मेरे विरह में, वाको कौन हवाल !!

भरत । दोहा ।

सती नारि के तेज सों, दुर्ज्जन दुष्ट-पतंग ।
जरि जरि मरैं, न करि सकैं, छलबल भरित उमंग॥
सती नामतें ह्वै रह्यो, दीपित भुवन अनन्त ।
कौन ताहि दुख दै सकै, मूढ़ नारकी जन्त॥

इन्द्र । मुनिवर ! आपका कहना बहुतही सत्य और उपयोगी है, पर क्या करैं; जब उस माधुरी मूर्त्ति का ध्यान करते हैं, तभी मन मचलने, हृदय फटने और प्राण तड़फने लगते हैं ।

भरत । एँ इन्द्र ! जो तुम इतने बड़े स्वर्ग के स्वामी होकर ऐसे व्याकुल होगे तो साधारण प्राणियों की क्या गति होगी ? यद्यपि सुरलोक की श्री (शची) को हरण करके दुष्ट दैत्यों ने इस लोक को उजाड़सा कर डाला है, पर किया क्या जाय ? जबतक सुख दुख की अवधि रहती है, तबतक उसे भोगनाही पड़ता है ।

परन्तु इस बात को तुम अपने मन में निश्चय समझो कि उस सतीशिरोमणि शची देवी के अमल और कोमल शरीर में कोई उंगली भी नहीं लगा सकता। इसलिये धीरज धरकर असुरों के संहार करने का उपाय करो। सर्वशक्तिमान जगदीश्वर की अनन्त दया से शीघ्रही तुम असुरों का नाश कर अपनी प्रणयिनी को पाओगे।

इन्द्र। आपका उपदेश बहुतही मधुर और हितकारी है और हम भी अपने मन को बहुत समझाते हैं, पर यह अभागा मन जब मचलता है, तब किसी तरह मानताही नहीं। हा!

चौपाई।

बहै सहस लोचन सों नीर।
मन चंचल नहिं धरै सुधीर॥
बिरह ज्वाल जारै मम देह।
अहो! सची बिन सूनो गेह॥

(लम्बी सांस लेता है)

भरत। धीरज धरो, देवेन्द्र! धीरज धरो! अपने चंचल चित्त को शांत करो। सुनो—

दोहा।

परम दयासागर सदा, सांत सच्चिदानन्द।
करि हैं कृपा कटाच्छसों, मेटि सबै दुख दन्द॥

इन्द्र। (मन में) ऐं! ऐसा भी कोई उपाय है कि जिससे अमर लोग भी मर सकैं? हा! इस विरह की वेदना से तो मौत चौगुनी सुखदाई है। (प्रगट)

दोहा।

जल विन ज्यों जल चर दुखी, रवि विन सकल जहान।
त्यों विन सची, मची इहां, विरहानल धुंधुकान॥

भरत। हे देवेश! अपने मन को व्यर्थ शोकसागर में डुबाने से हानि छोड़ लाभ कुछ भी नहीं है। इस लिये अब कलेजे पर पत्थर रखकर ऐसा यत्न करो, जिसमें शीघ्रही शची देवी प्राप्त हों। (कुछ सोचकर) अच्छा देखो! हम अपने भरसक तुम्हारे मन बह-लाने का कोई उपाय करैंगे (मन में) हा! बिचारे इन्द्र की दशा देखकर जबकि हमारा भी धीरज भागा जाता है तो इसे हम कहां तक समझावैं? सच है, प्यारी वस्तु का बिछोह बहुतही दुखदाई होता है। जिसके कलेजे पर यह चोट लगती है, उसीका जी जानता है।

बहै सहस्र नेत्र सों य, नीर, धीर छाड़ि कै।
दहै अतीव सांत चित्त हीय गेह फाड़ि कै॥
तथापि जो कृपा करैं सरस्वती तबै इहां।
बहै अन्दर-धार मोद, मोह मेटि कै महा॥

इन्द्र। सुनिवर! हम भी यही चाहते हैं कि किसी भांति

हमारे मन का बोझा कुछ हलका हो। यदि आपकी कृपा से जी ठिकाने होजाय तो फिर क्या कहना है? हां यह तो हम भी जानते हैं कि एक न एक दिन हमारी प्रानप्यारी फिर से हमारे अँधेरे को उंजेला करैंगी और यह भी निश्चय है कि उस सती स्त्री का कोई बाल तक बांका नहीं कर सकता। परन्तु इस समय कोई ऐसा उपाय निकालना चाहिए, जिसमें चित्त चंचल न हो। तभी उसके उद्धार और असुरों के संहार का भी प्रबंध अच्छी तरह हो सकैगा।

भरत। हां हां! जो भगवती ने कृपा की तो ऐसाही होगा।

इन्द्र। हृदय यातना अतुल यहै मेटै को आई।

भरत। समय पाय के मिटै आपुही दुखसमुदाई॥

इन्द्र। बिना सची के कौन इन्द्र को मन हरखावै।

भरत। धीरजही के धरे, मनुज आगे सुख पावै॥

इन्द्र। सोरठा।

को करिसकै बखान, प्यारी तेरे गुन अतुल।
बेधत हैं मम प्रान, ज्यों ज्यों सोचत हौं तिन्हैं॥

भरत। हे स्वर्ग की शोभा बढ़ानेवाले सहस्रलोचन! धीरज धरो। धीरज से दुरन्त दुख भी उतना दुखदाई नहीं होता, जितना कि थोड़ा दुःख अधीर होने से। देखो! सुख दुख बराबर चक्र की भांति घूमा करते हैं। संताप विपतवृक्ष की छायामात्र है। अतएव ज्ञानी पुरुष

दुःख को धैर्य्य से और अज्ञानी जीव रोकर काटते हैं।
देखो संसार में सबकी सदा एकसी नहीं निभती।
सदा सब कोई एकही पलरे पर नहीं तुलता। इस-
लिए जो विपत्ति में धीरज धरते हैं, वही सच्चे महा-
पुरुष हैं।

इन्द्र। (शांत होकर) आपके हितोपदेश ने हमारे हृदय
की चोट पर औषधि कासा काम किया।

भरत। अच्छा! अब हमारे संध्यावन्दन का समय हुआ,
इसलिए हम आश्रम को जाते हैं। तुम घबराहट
छोड़ कर अपने मन को सम्हालो। हम फिर आवैंगे।
(उठते हैं)

इन्द्र। (उठकर) इस तापदग्ध इन्द्र के मानसिक रोग की
औषधि शीघ्रही कीजिएगा। भूल न जाइयेगा।

भरत। यह क्या! तुम बालकों कीसी बातें करते हो!
भला हम तुम्हें भूल जायंगे! और ऐसे समय में!
धीरज धरो।

इन्द्र। जो आज्ञा (प्रणाम करता है)

भरत। शीघ्र मनोकामना पूरी हो।

(दोनो दो ओर से जाते हैं)

परदा गिरता है।

इति दूसरा दृश्य।

तीसरा दृश्य।

(रंगभूमि का परदा उठता है)

(सिर पर लकड़ी का बोझा और हाथ में फूलों की डाली लिए भरत मुनि के दो चेले आते हैं)

दमनक। (पृथ्वी में लकड़ी का बोझा और फूलों की डलिया पटक कर) शिव शिव। बोझा ढोते २ जान निकल गई। (सिर पर हाथ फेरता है)

रैवतक। (बोझा उतार कर) क्यों भाई! चांद गंजी होगई क्या! एं!

दमनक। (अंगड़ाई ले और गर्दन पर हाथ फेर कर) चलो जी, वाह! हमारा दम फूल गया और तुम्हें ठट्ठा सूझा है।

रैवतक। अजी! तपोवन में रहकर ऋषि मुनियों की सेवा करना और सांप का खिलाना बराबर है।

दमनक। तो तुम्हीं रात दिन गाड़ी के बैल की तरह जुते रहो। हम धाए ऐसे धंधे से। रात दिन जूझते रहो तो तुम भले और हम भले। पर जरा भी हाथ पैर ढीला किया कि चट गुरूजी लाल२ आंखें कर घोंटने लगते हैं। क्यों जी! इतना अंधेर! एं! भिक्षा मांग कर सबकी सब सामने ला धरो उसमें! से जो कुछ मिला तो जलपान भया नहीं तो कोरा उपास।

रैवतक। पर तुमने तो कभी उपास नहीं किया होगा।

दमनक। नहीं किया सही, फिर इससे क्या? मुनियों की ऐसी रीत है तो एक न एक दिन हमारे भी करम फूटेंगे।

रैवतक। भला जब जो होगा देखा जायगा, अभी से क्यों इतने उबल रहे हो।

दमनक। रहो जी, कैसी बातें करते हो। घड़ी भर भी जी को चैन नहीं मिलता। जब देखो तब 'यह करो और वह करो' की फुलझड़ी छुटा करती है। चूल्हे में जाय ऐसा काम।

रैवतक। (हंस कर) और भाड़ में जा तू। पागल न जाने कहां का।

दमनक। (झिझक कर) बचा! तू तड़ाक करोगे तो दो झापड़ लगावेंगे। हटो! हम ऐसे उजड्ड से नहीं बोलते।

रैवतक। अच्छा! बुद्धिसागरजी क्षमा कीजिए, आप आप-ही हैं आपकी क्या बात है। ल्यो जाने दो, आओ थोड़ी देर जी बहलावें।

दमनक। अब तुम राह पर आए। (घूमकर) अच्छा! यहीं टहलो। कैसी सुन्दर छाया है।

(दोनों टहलते हैं)

रैवतक। क्यों भाई! कैसी ठंढी हवा चल रही है।

दमनक। इसीसे जी हराभरा होगया। थोड़ीं देर टहलने सेही थकावट दूर होगई।

'ताना दिरना दीम् तानानाना' (वगल वजाकर गाता है)

(मुलतानी तिताल)

तारे दानी तुम तनन दिरना।

तदीयनरे तदीयनरे तारेदानी यललो-

यलललुम लुमलुम यलायलाय ललल

लेना॥ द्रद्रतुं द्रद्रतुं द्रतन दिरना॥

रैवतक। वस करो, वहुत भया। जरा इधर तो देखो। अहा! शरद ऋतु भी कैसी सुहावनी होती है? मानो प्रकृति देवी ने संसार की सब झंझटों से हाथ खींचकर शांति का सुन्दर जोड़ा पहिना हो! अहा!

कवित्त।

नील नभ वीच सेत वारिद विहार करैं-

सीतल समीर सुच्छ सोहै वेगरद है।

सथरे सरोवर सरोज विकसाने वेस-

गुञ्जत मधुप ओप आनन जरद है॥

करत कलोलैं हंस आवत विदेसन तें-

वनत संजोगी मौज मायल मरद है॥

पावन लगी हैं सुख अवला नवेली यह-

कैसी मनभावन सुहावन सरद है॥ १॥

दमनक। ठहरो जी! वस लगे न एक संग चरखा ओटने। अरे हमारे पास तो नवेली हवेली हुई नहीं। फिर हमें प्रानप्यारी का सुख दुःख कहां? यहां तो जोरू न

जाता उठल्लू से नाता !!! क्या करैं बड़ी बेवसी है। ब्रह्मचारी बनकर गुरु से विद्या पढ़ना शुद्ध झख-मारही नहीं, वरन जान पर खेलना है। रात दिन पिसते २ देह सूख कर कांटासी होगई। देखैं घर पहुंचते २ हाड़ चाम भी रहते हैं कि नहीं। (मन में) अपने राम तो अब खुर्पा जाला और जपमाला जल में डालकर यहांसे रमते बनैंगे।

रैवतक। ओ सिड़ी। एक नई कथा सुनावैं ?

दमनक। सिड़ी कहने वाले के सिर पर तिड़ी पड़ती है। यह जानते हो कि नहीं!

रैवतक। तुम तो बेपानी मोजा उतारने लगते हो।

दमनक। तुम्हारी बातही जो बे सिरपैर की होती है। अच्छा अपनी रामकहानी तो सुनाओ।

रैवतक। हमारी नहीं। स्वर्ग की।

दमनक। ऐं स्वर्ग की ?

रैवतक। हां स्वर्ग में भी इन्द्र की।

दमनक। क्या। क्या !! कहो तो सही ?

रैवतक। हमने गुरूजी से सुना है कि हत्यारे असुर लोग इन्द्राणी को हरण करके लेगए हैं, इसलिये इन्द्र बहुतही उदास हो रहा है।

दोहा।

बहै सहस लोचन सदा, द्वै सहस्र जलधार।

सूखि इन्द्र पीरो भयो, विरहागिन तन जार ॥

दमनक । वाह ! यह तो बड़ी रंगीली और नई कहानी सुनाई । पर इससे गुरूजी को क्या काम ?

रैवतक । गुरूजी ने उसके दुःख दूर करने की प्रतिज्ञा की है कि इसका उपाय हम करैंगे ।

दमनक । (मन में) यह तो वही वात हुई कि "वाहरवाले खाजायं औ घर के गावैं गीत" । अपने चेलों का दुःख दूर करतेही नहीं, इन्द्र का खेद मिटाने चले । (प्रगट) तो अव इन्द्रानी कहां हैं ?

रैवतक । गंधमादन पर्वत पर राक्षसों के शिविर में ।

दमनक । (मुहं चिढ़ा कर) क्योंजी ! इन्द्र के सामने से उनकी प्रानप्यारी स्त्री को असुर लोग लूट लेगए और उन से कुछ भी न वन पड़ा ? एं ! यह तो बड़ी लज्जा की वात है । तो फिर अव अपनी रानी को इन्द्र अपनावैंगे या सीता की भांति यह भी स्त्री को त्याग कर श्री रामचन्द्र की लीक पकड़ैंगे ?

रैवतक । क्योंरे मूर्ख ! छोटे मुह बड़ी वात ! राम राम ! सती शिरोमणि शची देवी के लिये तू ऐसे कठोर वचन कहता है ? छिः । ऋषियों के आश्रम में रहकर अभी तक तू निरा वैलही रहा !

दमनक । (उछल कर) और तू गधा वन गया । चल्लू न जानै कहां का । चुपरह, कलका छोकड़ा औ इन्ही

को सिखाने आया है। बचा! यह पण्डिताई अपने घर छौंकना।

रैवतक। हां जी! अच्छी बात कडुई लगतीही है। रहे। बचाजी! हम गुरूजी से तुम्हारी सारी ढिठाई कह देंगे, तब देखना तुम्हारी कैसी पूजा होती है। समझाने से उलटा गाली गलौज करते हो।

दमनक। पर पहिले छेड़छाड़ तो तुम्ही करते हो? (मनमें) यह रैवतवा साला बड़ा खोटा है। जो कहीं सचमुच गुरूजी से कह देगा तो बड़ा बखेड़ा मचैगा। इसलिये इसे चटकाना अच्छा नहीं। नजाने आज कहां से यह दुष्ट हमारे संग लगा (प्रगट) नहीं भैया! रैवतक! अब कभी ऐसी बात न कहैंगे। जाने दो, देखो हम तुम दोनो एक जगह रहते हैं, इसलिये आपस में टंटा करना अच्छा नहीं है। लो देखो! हम तुम्हें हाथ जोड़ते हैं (हाथ जोड़ता है)।

रैवतक। (उसका हाथ थाम कर) सुनो भाई! यह ऋषियों का आश्रम है। यहां पर बिना विचारे कोई बात मुख से नहीं निकालनी चाहिये। अभी जो कहीं कोई सुन लेता वा शाप वाप दे बैठता तो लेने के देने पड़ जाते, कहीं पता भी न लगता और तुम्हारे सङ्ग हम भी साने जाते।

दमनक। (मन में) वाहरे ठाठ! इतना कहा, मानो बहुत

बुरा किया। और जो जोरू छीन लेगये उनसे यह भी पूछने वाला कोई नहीं है कि तुम्हारे मुंह में कै दांत हैं। ठीक है "टेढ़ जान शङ्का सब काहू, वक्र चन्द्रमा ग्रसैं न राहू।" और इन रैवतवा का रङ्ग तो देखो! हमारे ऊपर रोब जमाकर अपना बड़प्पन दिखलाता है। (डरकर) ओ बाबा! जो कोई शाप लाप देदेता तो क्या होता? ऐं! अब यहां रहना अपने प्राण गँवाना है।

रैवतक। (हँसकर) क्या सोच रहे हो दमनक!

दमनक। अपना सिर!!!

(नेपथ्य में)

कवित्त।

आयु बल बुद्धि धन जन नित नित छीजै—
क्रोध लोभ मद मोह काम नेक दहुरे।
छोड़ि भ्रमजाल या कराल काल जानिढिग—
राधिका गुपाल के चरन दोऊ गहुरे॥
चारिहू पदारथ में आदि अन्त धारि उर—
गुरु उपदेस मान ज्ञान ध्यान लहुरे।
त्यागि के सुजान जग चीता के समान यह—
बीता सोई बीता अब सीताराम कहुरे॥

(दोनो कान लगाकर सुनते हैं)

रैवतक। अरे! गुरूजी आ पहुंचे। चलें पूजा की सामग्री सँजोवें।

(लकड़ी औ फूलों का चंगेर उठाता है)

दमनक। देखो भाई! गुरूजी से कुछ कहना सुन्ना मत। समझे न!

रैवतक। हम क्या ऐसे छिछोरे हैं जो इधर की उधर लगाया करेंगे। पर फिर कभी ऐसी ऊट पटाँग बात मत बोलना। (गया)

दमनक। इसकी नटखटी तो देखो! हमारे ऊपर दबाव डालता है।

(नदी में स्नान कर हाथ में कमंडल लिये भरत मुनि आते हैं)

भरत। (दमनक की ओर देख कर) क्योंरे दमनक! आज तू इतना उदास क्यों है रे! किसी से कुछ कहासुनी तो नहीं भई! ऐं?

दमनक। (मन का भेद छिपा कर) कुछ तो नहीं, हां आज आप सबेरे से कहां पधारे थे? देखिये, दोपर हुआ चाहता है (मन में) खोजते२ हमारी टांग टूट गई।

भरत। तो इससे क्या?

दमनक। (मन में) मारे भूख के जान निकल रही है और कहते हैं, इससे क्या (प्रगट) यही कि आपने कहा है कि "मध्यान्हे भोजनं कुर्यात्" अर्थात् दोपर तक

भोजन कर लेना चाहिये। सो आज देर जो हुई।

भरत। तो क्या चिंता है रे!

दमनक। (मन में) हम मरैं तो बखेड़ा मिटै। (प्रगट) पूजापाठ होम करते २ संझा हो जायगी तो आज निर्जला एकादशी करनी पड़ैगी ? देखिये दोपर ढलने में अब देर क्या है ?

भरत। (हंस कर) अच्छा तू हमारी फिकर मत कर। यह ले (फल देते हैं) नन्दनवन से तेरे लिये यह फल लाये हैं।

दमनक। (मन में) ऊंट के मुंह में जीरा (प्रगट) एं गुरूजी इतने में क्या पेट भर जायगा ?

भरत। (हंस कर) पेट न ठहरा भरसाइं ठहरी। पहिले खा तो सही, फिर पूछियो। आठ दिन तक भूख प्यास का नाम भी न लेगा।

दमनक। एं! एं! ऐसा ? (फल खाता है)

भरत। (हंस कर) वाह! तैंने तो लग्गा लगाही दिया। (मन में) हमने इस मूघे बालक पर बहुतही श्रम का भार डाल दिया है कि जिसमें शरीर नीरोग रहे। पर अभी यह अज्ञान और चंचल है, इससे कभी २ घबरा जाता है। कहीं ऐसा न हो कि उकता कर भाग जाय। क्योंकि इस होनहार लड़के पर हमारी बड़ी ममता है। अच्छा एक दिन इसे भी स्वर्ग की

घेर करा दूं, जिसमें भागने न पावे। (प्रगट) अरे दमनक! यह कैसा है रे!

दमनक। हां गुरूजी! बड़ा मीठा है। अहा! कैसा सुन्दर स्वाद है। ऐसा फल तो कभी सपने में भी नहीं खाया था।

भरत। (हँस कर) अच्छा आज तुझे भी नन्दन वन की बहार दिखावेंगे। वहां ऐसे २ फलों का जङ्गल है, जितना चाहे तोड़ लीजो।

दमनक। (प्रसन्न होकर) अहा! धन्य गुरूजी! (चरण छूना चाहता है)

भरत। (पीछे हटकर) अरे जूठे हाथ से यह क्या करता है?

दमनक। (हाथ जोड़कर) भूल गये, गुरूजी! क्षमा करियेगा। हां! नन्दन वन की ओर कब चलियेगा?

भरत। संध्या पूजा करके। परन्तु वहां तुझे परिश्रम भी करना पड़ेगा।

दमनक। (मन में) यह "परिश्रम" सांढ़े साती सनीचर की भांति हमारे पिंड पड़ा है। यह क्या विना प्रान लिये पीछा छोड़ेगा? (ठहर कर) पर मीठा फल जो ढेर सा मिलेगा।

भरत। चल! आश्रम में होम होने लगा, वह धुआँ उठता है (अँगुली से दिखाते हैं)

दमनक। जो आज्ञा (हाथ धोकर लकड़ी और फूलों की

डलिया उठाता है)

(आगे २ भरत और पीछे २ दमनक का प्रस्थान)

परदा गिरता है।

इति तीसरा दृश्य।

चौथा दृश्य।

(परदा उठता है)

(स्थान नन्दनवन का एक प्रान्त)

(आगे २ बीणा लिए भरत मुनि और पीछे २ मृदङ्ग लेकर दमनक और रैवलक आते हैं)

भरत। (घूम कर और देखकर) यद्यपि आजकल जाड़े के दिन हैं, पर यहां सदैव वसन्तऋतु ही विराजमान रहती है। अहा! फूलों से लपटी हुई शीतल, मंद सुगन्ध पवन कैसी अच्छी लगती है! वृक्षों पर बैठे हुए पक्षीगण कैसे चहचहा रहे हैं! फूलों पर झूमते हुए मतवाले भौंरे कैसा आनंद दे रहे हैं? और अपने अपने घोंसलों की ओर जाते हुए आकाशविहारी विहङ्गगण चित्त को कैसा प्रसन्न कर रहे हैं! (ऊपर देखकर) यद्यपि सूर्य्य अस्त होगए हैं, पर तो भी यहां स्वाभाविक तेज के कारण कहीं अंधेरे का नाम नहीं है।

वाह पूर्व दिशा में चन्द्रमा का भी उदय हुआ है। थोड़ी देर में जब इसकी निर्मल चांदनी चारों ओर वन में छिटकैगी, तब सङ्गीत की तरङ्ग ऐसा अपूर्व रंग दरसावेगी कि जिसका अनुभव केवल रसज्ञजनही कर सकते हैं (ठहर कर) अहा! देखते २ तारावली के बीच में गोल चन्द्रमा चमकने लगा।

(नेपथ्य में सनसनाहट)

(सब कान लगाकर सुनते हैं)

दमनक। एं! गुरूजी। यह क्या सुनाई देने लगा?

भरत। जान पड़ता है कि कुसुम सरोवर में स्नान कर अप्सरा जन आ रही हैं।

दमनक। (आश्चर्य्य से) क्या! वही अप्सरा, जिनकी कथा पुराणों में सुनी है!

भरत। हां वही।

(सब एक ओर खड़े होते हैं और आकाश मार्ग में आती हुई अप्सराएं दिखाई देती हैं)

दमनक। (अप्सराओं को देखकर मन में) अहा हा हा, धन्यभाग! वलिहारी! २ एं! स्वर्ग की स्त्रियां इतनी सुन्दर होती हैं? जो सदा कानों से सुना करते थे, वह आज आंखों से देखा। भला! मृत्युलोक की स्त्रियों में ऐसा रूप कहां?

रैवतक। (अप्सराओं को देखकर मन में) अहा! यही

स्वर्ग की सुन्दरी हैं। इन्हीं के प्राप्त करने के लिए लोग असंख्य रुपये खर्च कर बड़े २ यज्ञ यागादिक किया करते हैं। आज गुरूजी की कृपा से हमारे ऐसे अभागे के भी नेत्र सफल हुए। अहा हा! कैसी अपूर्व छटा है?

कवित्त।

जोड़ा जरीदार कसी कंचुकी करार, घेर-
दार घूंघुराले सोभासहज अपार हैं।
भृकुटी कमान दृग वान मुखपान सोहै-
अङ्ग अङ्ग भूखन अदूखन बहार हैं॥
गोरी मतिभोरी जैसें अमी की कटोरी, झूमैं-
अलकैं अमोल लोल लोचन उदार हैं।
आवत अनन्द सों सुराङ्गना सुहागभरी-
पहरात पंख थहरात कुच भार हैं॥

(देवाङ्गनाओं के झुंड निकल जाते हैं और दमनक टकटकी बांधे खड़ा रह जाता है)

भरत। (दमनक की ओर देखकर) अरे यह तो इतने सेही पागल होगया (उसके सिर पर हाथ रखकर) अरे! चेत चेत!! ओ दमनक!!!

दमनक। (चौंक कर) ऐं! ऐं! क्या है २ गुरूजी! क्या कहते हैं।

भरत। तेरा सिर! सिड़ी न जाने कहां का! सावधान हो

रैवतक। अरे भाई! दमनक! शांत होजाओ! जो कहीं कोई

देवता शाप वाप देदेंगा तो हमलोग भसम होजायंगे।

दमनक। (डर कर) ऐं ऐं! शाप! हाय बापरे मरे। क्यों गुरूजी! यह बात सच है? यहां भी शाप का बखेड़ा लगा है? (मन में) हम तो जानते थे कि मुनियों के आश्रम मेंही शाप का पाप घुसा है, पर नहीं, यहा भी वही उपाधि लगी है।

भरत। (हँस कर) रैवतक सच कहता है। देख, अभी तक तू भला चङ्गा है यही आश्चर्य मान।

दमनक। (मृदङ्ग पटक कर) लीजिये गुरूजी! हमें अभी अपने घर पहुंचा दीजिये। हम स्वर्ग की सैर से धाये। अब तो जीते जी कभी भूल कर भी स्वर्ग में पांव न रक्खेंगे। हमने झखमारा जो यहां आये। ऐसे स्वर्ग से तो हमारी टूटी फूटी मड़ैयाही अच्छी है कि जहां शापताप का तो प्रपंच नहीं है। हमें ऐसा स्वर्ग नहीं चाहिये (अपना कान ऐंठता है)

रैवतक। देखो! फिर कभी अप्सराओं की ओर आंखें फाड़ फाड़ कर मत देखना।

दमनक। नहींजी जो भया सो भया। हम क्या इतने मूर्ख हैं कि बार बार ठोकर खायंगे। (मन में) हमने सुना है कि स्वर्ग की मत वाली अप्सराजन सुन्दर युवा पुरुषों को देखकर मोहित होजाती हैं, पर हमारा क्या खाक रूप है, जो वह इस पर रीझैंगी?

(नेपथ्य में)

"ज़रा आइना लेकर अपना मुंह तो देख मल्लू ।"

(सुनकर सब एक दूसरे का मुंह देखते हैं)

भरत । क्यों बच्चा! अभी पेट भरा कि नहीं, या कुछ और फल चखने की इच्छा है?

रैवतक । अप्सराओं के पाने की लालसा अभी मिटी कि नहीं । (मन में) इस मूर्ख के कारण कहीं हमलोगों के सिर कोई आफत न आवै ।

(नेपथ्य में अट्टहास्य के संग)

हमलोग ऐसी पत्थर की नहीं हैं कि मानसिक अपराध के लिये शाप देती फिरैं ।

(सब कान लगा कर सुनते हैं)

दमनक । (डर कर आश्चर्य से) क्यों गुरूजी । आप तो तपस्या से तीनों काल की बातें जान लेते हैं, पर इन स्त्रियों ने हमारे मन का भेद कैसे जान लिया?

भरत । बेटा! यह देवलोक है । यहां के निवासी हस्तामलक की भांति त्रिकाल की बातें जान लेते हैं ।

दमनक । तो गुरूजी! हम अब सङ्गीत साहित्य छोड़कर वेद पढ़ेंगे ।

रैवतक । (जल्दी से) क्यों क्यों?

भरत । इसलिए कि जिसमें यज्ञ करके स्वर्ग को लूटलें । क्यों?

रैवतक । क्यों दमनक ! क्या यह बात सच है ?

दमनक । इसमें झूठ क्या है ? वेदही में लिखा है कि 'स्वर्ग-कामो यजेत्' अर्थात् स्वर्ग के सुख प्राप्त करने की इच्छा हो तो यज्ञ करना चाहिये ।

भरत । स्वर्ग का पाना दाल भात का गस्सा नहीं है । न जाने कितने लोग बराबर यज्ञ करते २ मर मिटते हैं पर उनमें से बिरलेही स्वर्ग में आते हैं । जो केवल यज्ञही करने से स्वर्ग प्राप्त होता तो यहां रहने के लिए किसीको दो अङ्गुल भी स्थान न मिलता । इतनी कसामसी या भीड़भाड़ होती कि लोग घबराकर यहां से भी कहीं दूसरी जगह भागने की इच्छा करते । और फिर अप्सराओं का भी ऐसा टोटा पड़ जाता कि सैकड़े पीछे भी एक २ अप्सरा न पड़तीं । और हमारे सङ्गीत औ साहित्य की महिमा तो देख कि तू इसी देह से नन्दनवन की हवा खाने आया है । कोई यज्ञ करने वाला पुरुष भी सदेह यहां की सैल करने आया है ?

दमनक । (चारो ओर देख कर) हमें तो यहां कोई भी नहीं दिखाई देता । तो क्या वेद झूठा है ?

भरत । दुर मूर्ख ! ऐसी छोटी बात मुख से निकालता है ?

दमनक । तो फिर क्या समझैं ?

भरत । इसे यों समझ कि जो लोग बिना किसी कामना

के यज्ञादिक वैदिक कर्म का अनुष्ठान करते हैं, उन्हीं को पूरा पूरा फल मिलता है । पर जो लालची लोभ वश बड़े२ मनोरथों को सोच कर यज्ञ करते हैं, उन्हें बड़ी विघ्न बाधा और विपत्ति झेलनी पड़ती है । यदि सब विघ्नादिकों से छुटकारा पाकर सांगोपाङ्ग कर्म समाप्त हुआ तब तो अवश्य वाञ्छित फल मिला, नहीं तो खाली परिश्रमही हाथ लगता है और उलटा नरक वास जो होता है सो घलुए में । अतएव ज्ञानी लोग वेद के तात्पर्य्य को समझ कर कामना रहित वैदिक कर्म करते हैं ।

दमनक । (मन में) ओ बाबा ! इसमें बड़ा बखेड़ा भरा है । तो फिर भला हमारे फूटे भाग्य में यह सुख कहां ? इतनी झंझट उठाने पर भी जल्दी पूरा २ फल नहीं मिलता और नरक जो मिलता है सो मानो दक्षिणा में (प्रगट) अच्छा गुरुजी अब हम सङ्गीत और साहित्य* ही से अपना सन्तोष कर लेंगे । क्योंकि इसमें नरक उरक का तो झगड़ा नहीं लगा है । और वेद की कठिनाई के आगे तो यह विद्या सहज भी है ।

* अथातः साहित्यं व्याख्यास्यामः । तच्च कविकल्पनाविश्वप्रसूतेरादि-कारणभूतपदार्थानां संहतिरेव (साहित्यम्) यथाह सुबन्धुः "काव्यसम्पाद-नोपयोगिवस्तुसमूहसंहतिरेव साहित्यम्।

रैवतक । तुम्हारे जान यह सहज होगी, पर हमें तो पहाड़-
सी दिखाई देती है ।

दमनक । गुरूजी ने कहाही है कि कोई विद्या हो, उसका
पढ़ना और लोहे के चने का चबाना बराबर है ।

भरत । हां ऐसा तो हई है । और देख तो सही; इस विद्या
के कैसे २ माहात्म्य महात्माओं ने कहे हैं ।

रैवतक । हां हां गुरुजी ! अब इसी की थोड़ी चर्चा होनी
चाहिये ।

दमनक । हमारी भी यही इच्छा है ।

भरत । अच्छा, तो ध्यान देकर तुम दोनों सुनो ।

(दोनो सावधानता नाट्य करते हैं)

(१) अलभ मनुज तन, तासु मध्य विद्या दुर्लभ अति ।
विद्या हू पुनि भये सुदुर्लभ कविता मधि गति ॥
कविता हू को पाइ शक्ति बहु दुर्लभ जन को ।
शक्ति पाय मन चाहत ना धन अखिल
भुवन को ।

रैवतक । ठीक है गुरूजी ! अब इसे न भूलेंगे । और यह
भी तो आपने पढ़ाया है—

---

(१) नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ॥
(अग्निपुराणे)

(१) धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष, यह चारि पदारथ ।
सरस काव्य को सेवन करि जन होत कृतारथ ॥
अखिल कला रत होइ प्रीति औ कीरति पावै ।
सुखसागर अवगाहि मानसिक मोद बढ़ावै ॥

भरत । हां तुझे स्मरण है भूला नहीं । और सुन–

(२) अर्थ धर्म अरु कामना, मोक्ष पदारथ चार ।
लहैं अल्पमति मनुज हू, काव्यहि तें* निरधार ॥

दमनक । और हमें भी याद है, गुरुजी !

भरत । हां हां तू भी सुनादे ।

दमनक । (मृदङ्ग पर थाप लगाकर गाता है)

(३) राग रागिनी जाति ताल सुरभेद हियेगहि ।
बीन बजावन तत्व मुरज विधि भलीभांति लहि ।
काव्य कला अनुरागि पागि मुद महापुरुष नर ।
शब्दरूप केशव समान सो मुक्ति लहै कर ॥

---

(१) धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥
(विष्णुपुराणे)

(२) चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि ।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निगद्यते ॥ (साहित्यदर्पणे)

* लोकोत्तराह्लादजनकत्वेन नर्त्तनसां हृदयद्रवीभूतकारणसमर्थः कविः तत्कर्मणि विशेषः तत्सर्वं काव्यम् । रसात्मकं वाक्यं काव्यम् । न तेन विना रमणीयताऽऽयाति, कुत आत्मत्वात् । आत्मना रहितत्वेन शववदेव नीरसवर्णनं काव्यनामभाक् । (सुबन्धुः)

(३) वीणावादनतत्वज्ञः स्वरजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं प्रयच्छति ॥

भरत। शास्त्रों में और भी असंख्य वचन इसकी महिमा से भरे पड़े हैं।

रैवतक। अहा! इतने दिनों तक पढ़ने से जो आनन्द नहीं मिला था वह आज प्राप्त भया।

दमनक। भाई यह तुमने सच कहा।

भरत। अच्छा! अब तुम दोनो काव्य की महिमा वाली वह गीत गाओ जो कल हमने बताई है।

दमनक और रैवतक। जो आज्ञा।

(भरतमुनि वीन बजाते हैं और दोनो मृदङ्ग बजा कर गाते हैं)

राग ईमन।

(१) जग में जगदायक कविता है।
अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष जब मिलै, बच्यो अरु का है?
लोकरीति औ नीति सिखावत आनंद देत महा है।
बनिता ऐसो मधुर बोल कहि उपदेसत करि चाहै॥

काव्यालापाश्च ये केचिद् गीतिकान्यखिलानि च।
शब्दमूर्त्तिधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः॥
(विष्णुपुराणे)

(१) काव्यं यशसेऽर्थकृते—
व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये—
कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥ (काव्यप्रकाशे)

सोई पावैं सबै मनोरथ जो यामें अवगाहै ।
नसैं अमंगल भलीभांति, छिति छावै रुचिर
छटा है ॥

(नेपथ्य में)

क्यों न हो, साक्षात् सङ्गीत के स्वरूप महामुनि भरताचार्य्य के बिना ऐसे अलौकिक अमृत की वर्षा कौन करैगा?

(सब सुनकर इधर उधर देखते हैं और इन्द्र का प्रतिहारी आता है)

प्रतिहारी। (प्रणाम करके) मुनिवर की जय होय ।

भरत। चिरंजीवी होवो। कहो पिंगाक्ष ! किधर चले ।

प्रतिहारी। आपका सङ्गीत सुनकर महाराज शचीपति बड़े मोहित हुए हैं।

भरत। यह हमारे दोनो शिष्य (दमनक और रैवतक को अङ्गुली से दिखाकर) गा रहे थे। अच्छा देवेन्द्र इस समय कहां विराजे हैं?

प्रतिहारी। (मन से) ओहो ! जिनके चेले ऐसा गाते हैं कि जिसे सुनकर इन्द्र भी मोहित होगए तो फिर भरतमुनि के गाने का क्या पूछना है? सच है! इसीसे तो गन्धर्व विद्याधर आदि सभी भरत मुनि के आगे सङ्गीत विद्या में सिर झुकाते हैं और अप्सराओं की तो कुछ गिनती ही नहीं।

भरत। (मुसक्याकर) ऐं तुम सोच क्या रहे हो?

प्रतिहारी। नहीं, योंही कुछ। हां सुनिये,पाकशासन वैजयन्त प्रासाद से अकुलाकर इस सन्ध्या के सुहावने समय में कुसुम सरोवर के तीर आकर चक्रवाक मिथुन के विछोह को देख बहुतही बिकल हो रहे थे, पर आपके शिष्यों के सङ्गीत को सुनकर वे फिर सावधान हुए हैं।

भरत। परन्तु तुम्हें किसलिए देवेन्द्र ने भेजा है?

प्रतिहारी। महाराज ने आपसे निवेदन किया है कि हमारे चित्तविनोद का उपाय आप शीघ्र करिये और दर्शन दीजिये।

भरत। देवेन्द्र से हमारी ओर से समझाकर कहना कि हम बहुत जल्दी इसका उपाय करके उनसे मिलेंगे और आशा है कि उनका मनोरथ शीघ्र पूरा होगा।

प्रतिहारी। जो आज्ञा (प्रणाम करके जाता है)

रैवतक। (मन में) अहा! तपस्या का प्रभाव धन्य है कि जिसके आगे स्वर्ग के रहनेवाले देवता भी सीस नवाते हैं!

दमनक। (मन में) हमारे बड़े भाग्य हैं कि ऐसे गुरू हमें मिले कि जिनका मुंह देवता भी जोहा करते हैं।

भरत। अरे तुम दोनो थोड़े से फूल बीनकर उस ओर (अँगुली से बताकर) आकाशगङ्गा के तट परआना। हम आगे चलते हैं।

रैवतक और दमनक। जो आज्ञा।

(भरतमुनि का एक ओर से प्रस्थान)

दमनक । पहिले तो हम फल तोड़ तोड़ खायंगे पीछे फूल बीना जायगा ।

रैवतक । (फूल बीनते २ हंसकर) पर हाथ धोने के लिए जल कहां से आवैगा ?

दमनक । दुत्तेरा बुरा होय । कैसी बाधा डाल दी ! छीः !

रैवतक । लो ! चटके न ! वहीं न फल लेते चलो, मजे में आकाशगङ्गा के किनारे बैठकर दोनो जने भोग लगावैंगे ।

दमनक । (मन में) देखो बचा की धूर्त्तता । अपनी टिक्की पहिले जमाता है । पर हम तो फल जूठे करके इसे अंगूठा दिखा देंगे (प्रगट) यह तुमने बहुत अच्छा कहा ।

(फूल और फल तोड़ता है)

रैवतक । लो ! हमने तो एक टोकरी फूल बीन लिए ।

दमनक । देखो हमने कितनी जल्दी तुमसे दूना फूल भी बीना और फल भी तोड़ा ।

रैवतक । । तुम्हारी क्या बात है, तुम तुम्ही हो ।

दमनक । भला २ अब चलो सिद्धजी ।

(दोनो जाते हैं)

परदा गिरता है ।

इति चौथा दृश्य ।

पांचवां दृश्य ।

परदा उठता है ।

(स्थान आकाशगङ्गा का तट)

(कल्पवृक्ष के पत्तों के ऊपर फूलों का आसन बिछा है और उसके सामने वीणा लिए भरत मुनि बैठे हैं, तथा मृदङ्ग लेकर दमनक और रैवतक उनके पीछे बैठे हैं। भरत मुनि के पास पूजा के लिए फूल और फल रक्खे हैं)

भरत । (बीन के तारों को छेड़ कर) देखो बेटा । तुम दोनो अब सावधान होकर मृदङ्ग बजाओ, हम सङ्गीत आरम्भ करते हैं ।

दोनो । जो आज्ञा (मृदङ्ग पर थाप जमाते हैं)

भरत । (गाते हैं) राग झझोंटी ।

कमलदल-चरन ध्यान करिये ।
महरानी बानी गुन गुरिमा हिये आनि धरिये ॥
सदासनेह सने दृगकोरनि चितै मातु ढरिये ।
हंसवाहिनी देवी ! मेरी रसना अनुसरिये ॥

(छप्पय छंद—राग जैतश्री)

नौमि कमलदलमाल भाल विधुभूखन धारिनि ।
सदा दीनजन हेरि सबै बिद्या उर कारिनि ॥
स्वेत बसन परिधान स्वेत सुखमा तन छाये ॥
स्वेत बिभूखनरासि हास तन मृदु मुसुकाये ।

कृपाकटाक्षनिसों करौ द्रवै मातु निज नेह सब।
चरन कमल उर अंतरै धरौ बेगि मम गेह अब॥

(और भी)

पद्मासन शुचि सेत, सेत तन हंस सवारी।
रुचि हिय वासिनि मात, तात विधि बाम दुलारी॥
हे सुजान गुनखानि दया इत हूं अब कीजे।
मम संकटसर्वस्व मेटि माता सुख दीजे॥
तुम्हें हेरि अब मैं जननि विनवत गुन गम्भीर शुचि।
करौ पूर मनकामना मों उर अंतर हेरि पुनि॥

(एकाएक आकाश में उँजेला होता है और रिद्धि सिद्धि के संग धीरे२ सरस्वती उतरती हैं, उन्हें देख शिष्यों के सहित भरत मुनि खड़े होकर हाथ जोड़ स्तुति करते हैं)

भरत। शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं—वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्। हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां—वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।

(आकाशमार्ग से उतरकर सरस्वती पुष्पों के आसन पर बैठतीहैं। भरत मुनि फल पुष्प चढ़ाकर फिर खड़े हो हाथ जोड़ स्तुति करते हैं)

ऐं ऐं ऐं जाप्यतुष्टे हिमरुचिमुकुटे वल्लकी व्यग्रहस्ते, मातर्मातर्नमस्ते दह दह जडतां देहि

बुद्धिं प्रशस्ताम् । विद्ये वेदान्तगीते श्रुतिपरिपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे, मात्रातीतस्वरूपे भव मम वरदे शारदे शुभ्रहारे ॥

(भरतमुनि चरणों पर पुष्पाञ्जली चढ़ाकर साष्टांग प्रणाम करते और फिर खड़े हो हाथ जोड़ कर स्तुति करते हैं)

कवित्त ।

जाहि भजैं सेस औ महेस त्यों गनेस बेस-
सकल सुरेस औ नरेस मन लायकै ॥
जाहि भजैं जोगी जती तापसी बिरागी रागी-
सकल सँजोगी भोगी चोप चित्त चायकै ॥
जाहि भजैं रमा उमा रामा औ तिलोत्तमा हू-
कोविद सुकबि कोटि कविता बनायकै ॥
वागीश्वरी भारती भवानी देवबानी मातु-
देवी सरस्वती सोहैं आसन पै आयकै ॥

(और भी)

गोरी देह वारी जरतारी सेतसारी धारी-
भूखन सँवारी भारी हंस की सवारी है ॥
माथे मोर मुकुट किरीट कान कुंडल है-
सोहै इन्दु बिंदु भाल कंजमाल धारी है ॥
पुस्तक कमल बीन फाटिक करन लीन्हे-
चारि हूं भुजा तें दुष्ट दानव सँघारी है ॥

चारि गुनवारी कविकंठ वास वारी मातु-
बानी सुबासानी सदा ज्ञान देनवारी है ॥

सोरठा ।

को करिसकै निहाल, विपति परे सुत के सदा ।
विना मातु पितु हाल, जगजीवन जननी जनक ॥

(हाथ जोड़े हुए प्रणाम करके) हे माता! अब तुम्हारी शरन छोड़कर कहां जायं! इस समय तुम्हारे बिना कौन हमारी लाली रक्खेगा? मां! अपने अपनाए हुए बालक की जल्दी सुधि लो। हे जननी! अब शीघ्र कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे हम इन्द्र की विरहव्यथा को दूर कर उसके चित्त को प्रसन्न कर सकें। देवी! जो हमारी प्रतिज्ञा भङ्ग होगी तो फिर तुम्हारा माहात्म्य कहां रहैगा? (चरण पर पुष्पांजलि प्रदान)

सरस्वती। (मन्द मुसकान पूर्वक) हे सङ्गीतसुधाबुंद बरसानेवाले भरत! आज हम तेरी स्तुति से बहुत प्रसन्न हुईं। अब तू अपने मन में किसी बात का सोच न कर। हमारे रहते त्रैलोक्य में कौन ऐसा पदार्थ है जो तुझे नहीं मिल सकता और किसकी इतनी सामर्थ्य है जो तेरी प्रतिज्ञा के भङ्ग करने या कराने का साहस करैगा। आज अवश्य तुझे तेरी अचलभक्ति का प्रसाद मिलैगा।

भरत। हे जननी! माता को छोड़कर और कौन ऐसा

संसार में है जो इतनी दया पुत्र पर करै।

सरस्वती। देख पुत्र! इस अलौकिक वस्तु का मुख्य अधिकारी केवल तू ही संसार में है। इसी से आज यह वस्तु सुपात्र में अर्पित होती है, ले!

(भरत के हाथ में पुस्तक देती हैं)

भरत। (हाथ में पुस्तक ले और साष्टांग प्रणाम करके) हे माता! तुम्हारी दया का पारावार नहीं। तुम धन्य हो। आज हम निस्सन्देह कृतार्थ हुए। आजही हमारा जीवन, तप, पांडित्य और शरीर का धारण करना सफल हुआ।

(आंखों में आनन्दाश्रु छाजाते हैं)

सरस्वती। हे बेटा! इस अपूर्व विद्या को त्रैलोक्य में प्रचलित करके तूही इसका आद्याचार्य होगा। देख! साहित्य के प्रधान दो अंगों में से प्रथम भाग को, जिसमें कि श्रव्यकाव्य के भेद का वर्णन है, हम तुझे देही चुकी थीं, आज यह उसका दूसरा भाग भी, जिसमें दृश्यकाव्य का निरूपण किया गया है, तुझे दिया गया। इसका बड़ा माहात्म्य है और शास्त्रों में भी इसकी थोड़ी महिमा नहीं लिखी है।

भरत। हे माता! तुम धन्य हो और तुम्हारी दया भी धन्य है। अहा! आज हमारे वाम और दक्षिण अङ्ग की भांति साहित्य के भी दोनों अङ्ग पूरे होगये।

हे जननी ! जैसे तुमने पहिले मुझे सङ्गीत और काव्य* विद्या देकर अनुग्रहीत किया था वैसेही आज साहित्य भंडार के अनमोल रत्न नाट्यविद्या को भी देकर अतिशय कृतकृत्य और चिरबाधित किया। क्योंकि महात्माओं ने कहा है कि—

दोहा ।

(१) साहित्यऽरु संगीत की कलाहीन नर जौन ।
सींग पोंछ बिन जगत में खासो पसु है तौन ॥

सो माता ! आज तुमने मेरे इस कलङ्क को मिटा दिया ।

सरस्वती । सत्य है । सङ्गीत और साहित्य के विना मनुष्य, मनुष्यत्व से बिल्कुलही दूर रहता है । हम भी यही कहेंगी कि—

संगीत अरु साहित्य सों जग माहिं जे नर हीन हैं ।
पसु के समान सुदाय पग सों सींग पोंछ विहीन हैं ॥

भरत । किन्तु हे माता ! जैसे दया करके इस गुप्त विद्या को तुमने दिया है, वैसेही कृपा कर अपने मुख से थोड़ासा उपदेश भी करदो तो यह ग्रन्थ फलीभूत होजाय ।

---

* रसात्मकं वाक्यं काव्यम् । (सुबन्धुः)

(१) सङ्गीतसाहित्यकलाविहीनः ।
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ॥

सरस्वती। वत्स! यह ग्रन्थ साहित्य के दूसरे अंग नाटक-
विद्या की निधि है। इसमें समस्त रसों से (१) भरे
हुए रूपक (२) और उपरूपकों का (३) वर्णन किया
गया है। अधिक कहने का कोई प्रयोजन नहीं है।
इस पुस्तक को एक बेर अवलोकन करनेही से तू इस
विद्या में निपुण होजायगा। और देख! रंगभूमि में
इन रूपकों के अभिनय करने से संसार में कौन ऐसा
महामूढ़ है जो मोहित न होगा? बेटा! इन्द्र तो क्या,
जगदीश्वर भी इससे प्रसन्न होकर चारों पदार्थ देते
हैं। नाट्यशास्त्र की अनन्त महिमा शास्त्रों में गाई
गई है, सुन!—

(१) शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स,
अद्भुत, शान्त, वात्सल्य, सख्य, भक्ति, आनन्दादि
त्रयोदश रसाः। (सुबन्धुः)

(२) नाटकमथ प्रकरणं, भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः, प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥
(साहित्यदर्पण)

(३) नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेंखणं रासकं तथा॥
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं तु विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणिका हल्लीशो भाणिका तथा॥
अष्टादशभिधान्येव रूपकाणि निगद्यते॥
(सुबन्धुः)

(१) धर्म अर्थ अरु काम को साधन नाटक जानि ।
ताके अभिनय करि लहैं सुकवि मुक्ति मनमानि॥

भरत । हे माता! आज हम एक मुख से अपने भाग्य की प्रशंसा और तुम्हारी दया की महिमा वर्णन नहीं कर सकते। (आनन्दाश्रु गिर पड़ते हैं)

सरस्वती । और देख! नाटकाभिनय देख कर देवता हो या मनुष्य, सबका हृदय शृङ्गार, वीर, करुणा आदि रसों से पूर्ण होकर तदाकारता को प्राप्त होता है। चाहे कोई किसी प्रकृति का क्यों न हो, पर वह भी नाटकाभिनय को देख कर उसमें वर्णित रस के अनुसार अपनी प्रवृत्ति को प्रगट करता है। वत्स! यह ऐसी विचित्र कल है कि इसके द्वारा देश वा समाज का सब कुछ उपकार होसकता है। विशेष क्या कहूँ, भूमंडल में जब यह विद्या प्रचलित होगी तो इसके अनुरागी मनुष्यों के मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होजायगा। क्योंकि इस विद्या से लौकिक और पारलौकिक, दोनों कर्म सिद्ध होते हैं।

भरत । हे स्नेहवती जननी! निस्संदेह आज हमारे सुख की सीमा न रही। हम क्षुद्र जीव एक मुख से तुम्हारी

(१) धर्मार्थकाममोक्षाणां साधकं नाटकं भवेत्।
यस्याभिनयमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता॥

(अग्निपुराणे)

असीम महिमा का बखान नहीं कर सकते ।

(हाथ में फूल लेकर)

"स्तौमि त्वाहं च देवीं मम खलु रसनां मा कदाचित्त्यजेथा- मा मे बुद्धिर्विरुद्धा भवतु मम मनः पातु मां देवि पापात् ॥ मा मे दुःखं कदाचित्क्वचिदपि समये पुस्तके नाकुलत्वं- शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्मास्तु कुंठा कदापि ॥"

(चरण पर पुष्पाञ्जलि प्रदान)

सरस्वती। तथास्तु । और हे पुत्र! संगीचार्य्य। भरत! आज हमहीं प्रथम२ तुझे साहित्याचार्य्य की पदवी प्रदान करती हैं। (भरत चरणों पर गिर कर प्रणाम करते हैं) अब तू पहिले जाकर नाट्यशाला सज। फिर उसमें नाट्यरचना,नेपथ्य की परिपाटी, दृश्य के पट और पात्रों को ठीक कर नाटकारंभ कर।

भरत। जो आज्ञा।

(नेपथ्य में)

राग यथारुचि

मातु मैं सरन तिहारी आई।
भूलि इते दिन खोयो नाहक सोचि २ पछिताई ॥
हरहु हिये को अंधियारो सब जहां मूढ़ता छाई।
सुमति भान अब उगैं खिलैं मन कमल छटा दरसाई ॥
भाव भौंर नवरस नित चाखैं नव अभिलाख जनाई।

जहँ संजोग भोग बहु भांतिन कवि तेरो गुन गाई।

भरत। हे माता! देवाङ्गनाजन तुम्हारी विनती कर रही हैं।

रसस्वती। हे बेटियों! तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।

(नेपथ्य में)

अहाहा! आज हमलोगों के भाग्य खुले।

(देवाङ्गना जय जय ध्वनि करती हुई आकाशमार्ग से फूल बरसाती हैं और रिद्धि सिद्धि के सङ्ग सरस्वती अन्तर्धान होती हैं)

भरत। (चौंक कर) ऐं देखते २ माता किधर अन्तर्धान होगईं? (दोनो चेलों को देखकर) अरे! ये दोनों आंख बन्द किये कठपुतली की भांति क्यों बैठे हैं? (जल छिड़क कर दोनों को सावधान करते और दोनों अंगड़ाई लेकर आंख मलर इधर उधर देखते हैं)

भरत। क्या तुम दोनों सोगए रहे?

दमनक। क्या जाने गुरुजी। घुमड़ीसी आई।

रैवतक। नहीं गुरूजी! नसासा चढ़ा था।

दमनक। नहीं २! चक्करसा आने लगा था।

भरत। तो क्या तुम लोगों को भगवती के दर्शन नहीं हुए?

रैवतक। अहा हा हा! कैसी तेजपुञ्ज मूर्त्ति रही! अहा! अभी तक आंखों के आगे घूम रही है। पर फिर–

दमनक। फिर कुछ न जान पड़ा कि कहां क्या भया।

भरत। (आश्चर्य्य से) एं! ऐसा क्यों हुआ? (सोचकर) हां! अब समझे। उस महा तेजोमय मूर्त्ति के आगे तुम लोगों की सब इन्द्रियां शिथिल होगई होंगी!

रैवतक। ठीक है। इसीसे हमलोगों की सब सुधि बुधि बिसर गई होगी।

दमनक। क्यों गुरूजी आपके हाथ में यह कौन पोथी है?

भरत। बेटा। माता वागीश्वरीदेवी ने यह नाट्यविद्या की पुस्तक दी है।

दमनक। नाट्यविद्या किसे कहते हैं?

भरत। किसी कैातुक को प्रत्यक्ष दिखला कर लोगों की रुचि उस ओर फेरना।

रैवतक। यह तो कुछ भी समझ में न आया।

भरत। अभी देखना कि इसमें कैसा खेल तमाशा भरा है।

दमनक। एं। खेल तमाशा! नाटक! वाह यह क्या है गुरूजी! कुछ समझ में नहीं आता।

भरत। पहिले इसका कैातुक देख तब पीछे धीरे धीरे समझियो।

दमनक। तो गुरूजी! पहिले हमें पढ़ाकर तब दूसरे को बताइयेगा।

भरत। (हंसकर) हां हां। पहिले तूही पढ़ियो।

(नेपथ्य में)

जौलों रवि ससि निज अधिकाहिं—
सेवैं सुभग मयूखन।
तौलों ह्वै है तुमरी कीरति—
अखिल लोक की भूखन॥

(सब कान्न लगा कर सुनते हैं)

रैवतक। गुरूजी! यह किसने किससे कहा?

भरत। (हर्ष सहित) अहा! अप्सराओं ने भी हमैं वरदान दिया। क्यों न हो! यह सब भारतीश्वरी देवी की अनन्त दया का प्रत्यक्ष फल है। (मन में) तो अब इन्द्र को समाचार देकर नाटक खेलने का प्रबंध करैं? परन्तु उसके पास किसे भेजैं? (सोचकर) वहां दमनकही को भेजना उचित है। यद्यपि यह बालक चंचल और ढीठ है पर बकवादी और हंसौड़ भी है इस समय ऐसेही स्वभाव वाले पुरुष से इन्द्र का जी बहलैगा और वह इसकी चपलता वा ढिठाई से रुष्ट न होकर वरन और भी प्रसन्न होगा (प्रगट) अरे दमनक!

दमनक। हां गुरूजी!

भरत। तू इन्द्र को देखैगा?

दमनक। (आश्चर्य से) ऐं कहां! इन्द्र है?

भरत। उतावला न हो, सुन! तू इन्द्र से जाकर यह कह कि भगवती ने गुरूजी को नाट्यविद्या दी है, उसी से आज

तुम्हारा सब खेद दूर होजायगा, अब सोच न करो। क्योंकि गुरूजी शीघ्र आते हैं।

दमनक। (मन में) लो! फिर एक बखेड़ा लगा न। (प्रगट) इन्द्र को हम कहां ढूंढ़ते फिरेंगे?

भरत। इसकी चिन्ता न कर! इस स्वर्गलोक के प्रभाव से तू आप ठिकाने पहुंच जायगा (रैवतक से) अरे रैवतक! तू हमारे सङ्ग चल। नाटक खेलने का प्रबंध करैं। (दमनक से) और सुनरे हठी! इतने बड़े स्वर्ग-साम्राज्य के स्वामी सुरेन्द्र के सामने ढिठाई न कीजो। देख,सावधान! यह स्वर्ग है,कुछ तेरा आश्रम नहीं है, इसलिये सावधान!!

(रैवतक के सङ्ग भरतमुनि जाते हैं)

दमनक। हाय न जाने हमारी कैानसी ग्रहदशा आई है कि अभी तक इससे अपना पीछा नहीं छूटता। मुनियों के पास रहना क्या हंसी ठट्ठा है। आज दैाड़ते दैाड़ते टांग टूट गई, पर अभी तक छुट्टी न मिली अरे हमारे पैर में सनीचर आघुसे हैं क्या! हा! इन्द्र तो अपनी स्त्री के लिये रो रहा है पर हम क्यों चने के सङ्ग घुन की भांति पीसे गए? वाहरे बिधाता! शाबास! शाबास! सारे सरीर के जोड़ उखड़े जाते हैं (भूमि में लोट पोट करता है) नस २ तो चटक रही हैं चलैं क्या पत्थर? पर अब किया क्या जाय!

सांप छछूंदर के फेर में पड़े हैं। जायं इन्द्र के गांव भी झींख आवैं (उठकर भय नाट्य करता हुआ) अरे! यह स्वर्ग है कोई शापवाप न देदे। (अपने मुंह में तमाचा मार और कान मलकर) सावधान, सावधान अरे! गुरूजी को क्या सूझा था जो हमें ऐसे चहले में फंसा गए। यहां से जीते जागते जब अपने घर पहुंचैंगे तब जानैंगे कि हम जिन्दों में हैं। पर न जानैं अभी कितना करम भोग भोगना वाकी है। अच्छा चलो दाताराम! चलो! देखा जायगा (अँगड़ाई लेता गिरता पड़ता बड़बड़ाता हुआ जाता है)

परदा गिरता है।

इति पांचवां दृश्य।

छठवां दृश्य ।

परदा उठता है ।

(स्थान नन्दनवन—कुसुम सरोवर)

(सरोवर के तीर सिर झुकाये इन्द्र उदास बैठा है)

इन्द्र । हाय! अब तो हृदय किसी भांति शान्त नहीं होता। जितना इसे ढाढ़स देते हैं उतनाही यह अधीर हुआ जाता है । क्या करें? कहां जायं? किससे कहें? यह ऐसी ठंढी आग है कि इसे कोई जल्दी बुझाही नहीं सकता । क्योंकि—

दोहा।

प्रियविछोह की भांति जग और दुसह दुख नाहिं।
समुझाये पुनि होत बहु विकल प्रान तन माहिं॥

(ठहरकर) ऐं! इतना विलंब भया, अभी तक भरत मुनि नहीं आये । क्या उन्होंने केवल हमें ढाढ़स देने के लिये कोरी बातें बनाई थीं? नहीं नहीं, यह तो कभी होही नहीं सकता कि वह खाली बढ़ावा देकर टाल बाल कर गये हों । ऐं! पिंगाक्ष ने तो आकर कहा था कि मुनिवर शीघ्र आवेंगे पर इतनी देर क्यों हुई?

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल। महाराज की जय होय। महर्षि भरताचार्य्य का एक चेला द्वार पर खड़ा है।

इन्द्र। (सिर उठा कर सहर्ष) क्या कहा? भरताचार्य्य का चेला? तो उसे जल्दी भेजो।

द्वारपाल। जो आज्ञा। (गया)

इन्द्र। अभी हम सोचही रहे थे कि भरतमुनि क्या हमें भूल गये, पर नहीं। महात्माजन स्वभावही से दयालु और परोपकारी होते हैं। वे लोग बिना किसी स्वार्थ या प्रयोजन के ही दीनों पर दया करते हैं। अच्छा, देखें अब हमारा मन क्योंकर ठिकाने आता है। हा! इन्द्राणी के वियोग ने हमारे हृदय पर ऐसी गहरी चोट लगी है कि जिसका जल्दी अच्छा होना बहुत ही कठिन दिखाई देता है।

(इन्द्र सिर झुकाये हुए कुछ सोचता है और इधर उधर देखता हुआ दमनक आता है)

दमनक। अहा! हमारे गुरुजी का कैसा प्रताप है कि हम बिना किसी से पूछे ताछे यहां तक पहुंच गये और जिनकी कृपा से स्वर्ग की छटा देखी, उन्हींकी दया से आज इन्द्र के भी दर्शन होंगे। भला हममें इतनी सामर्थ्य कहां थी कि इसी देह से स्वर्गलोक में आकर जहां चाहते वहां घूमा करते और कोई न टोकता! ओहो! मुनियों की सेवा करने से कैसे २ अपूर्व फल

मिलते हैं? (थोड़ा आगे बढ़ और देख कर) वही तो! सामने कुसुमसरोवर के तीर स्फटिकशिला पर सिर झुकाये इन्द्र बैठे हैं। ऐं ऐं! इनके तो सारे शरीर में आँखही आँख दिखाई देती हैं। (एक-दो तीन करके गिनता हुआ) ओह! दूर करो, कहां तक गिनें। सौ पचास हों तो गिनी भी जायँ। यहां तो सैकड़ों की गिनती ठहरी। सुना था कि इन्द्र के हजार नेत्र हैं, सो आज आंखों देखा। पर इनके सब नयनों में आँसू की बूंदें क्यों चमक रही हैं? ऐसा सुन्दर मुख मुर्झाय क्यों गया है? (सोच कर) हां हां! अब समझे। इन्द्राणी के बिछोह ने इनकी ऐसी दशा की है। तो क्या प्रियतमा स्त्री का वियोग इतना दुखदायी होता है? राम! राम! ईश्वर न करै कि हमैं भी कभी ऐसा दुःख भोगना पड़े। अपने राम तो अब कभी ब्याह का नाम भी न लेंगे। जो कहीं कोई असुर ससुर छीन लेगा तो हम उसका क्या कर लेंगे! जब इन्द्रही के किये कुछ नहीं होता तो हमारी कौन गिनती है! और फिर जब इन्द्र इतना उदास हो रहा है तो भला हमारे प्रान काहे को बचैंगे? जाई! हम तो अब जाकर मृत्युलोक के राजाओं को चिताय देंगे कि अब तुम लोग इन्द्र बनने की लालसा से हाथ धोडालो, नहीं तो एक न एक दिन जोरू

जरूर गँवानी पड़ेगी । हहहह !!! कैसा अंधेर है कि कुछ कहाही नहीं जाता । (आगे बढ़ कर) स्वर्ग की वेश्याओं के आदर करनेवाले सहस्रलोच की जय होय ।

इन्द्र । (चौंक कर) अरे ! तुम कौन ?

दमनक । हम हैं दमनक !

इन्द्र । क्या मुनिवर ने तुम्ही को भेजा है ?

दमनक । इसमें कुछ सन्देह है ?

इन्द्र । नहीं नहीं सन्देह कुछ भी नहीं है ।

दमनक । गुरूजी ने प्रार्थना की है कि.........

इन्द्र । (जलदी से) क्या आज्ञा की है ?

दमनक । इतनी उतावली कीजियेगा तो हम सब आगा पीछा भूल जायँगे ।

इन्द्र । अच्छा ! धीरे २ कहो ।

दमनक । धीरे बोलने का हमे अभ्यास नहीं है ।

इन्द्र । (मुसकाय कर मन में) यह तो कोई विचित्र वटु दिखाई देता है । पर सीधा भी इतना है कि हमारे सामने कुछ सङ्कोच नहीं करता (प्रगट) अब जैसे तुम्हारे जी में आवै, वैसे कहो ।

दमनक । अब महाराज ने हमारे मन की बात कही । तो अब आप इतने दुःख का भार क्यों सहते हैं ? आपके रोग की औषधि बन गई है । गुरूजी आकर शीघ्र

ही इसकी जड़ तक खोद कर फेंक देंगे। इसलिये इस व्याधि से छुटकारा पाने में अब देर न समझिए।

इन्द्र। (दमनक की ओर देखता हुआ मन में) यह तो बड़ा हँसोड़ या ढीठ जान पड़ता है और इसके आचरण से ऐसा प्रतीत होता है कि भरतमुनि के लाड़ प्यार ने इसे और भी चौपट कर दिया है। परन्तु भोला भी ऐसा है कि निडर होकर हमसे सीधी २ बातें कर रहा है। क्योंकि इसे अभी तक यह ज्ञान नहीं है कि किससे किस रीति से बातें करनी चाहिए। जो होय, पर थोड़ी देर इसकी बातोंही से जी बहल जायगा। (प्रगट) क्या मुनिवर आरहे हैं?

दमनक। यही बात तो कहा सुजान।
(मनमें) फिर क्यों पूछत बारंबार॥

इन्द्र। (हँसकर) वाह! जैसा विचित्र तू है, वैसीही तेरी कविता भी अद्भुत है। (मन में) अच्छा! थोड़ी देर भरत नहीं तो इस अड़भारनही से अपना माथा खाली करें। जान पड़ता है कि भरतमुनि ने जानबूझ कर इस उजड्ड को यहां भेजा है कि जिससे हमारा जी बहले (प्रगट) क्योंरे दमनक! तू आशुकवि कब से हुआ?

दमनक। आपको अभी तक यह विदित ही नहीं था? अरे! संगीतविद्या तो गुरूजी ने घोल कर पिलाही

दी है रहा साहित्य; सो भी आधा तो चाट गये,बाकी जो बचा है,वह भी दो चार दिन में चटनी कर डालेंगे।

इन्द्र। (हंस कर) वाहरे लड़के शाबाश! क्यों न हो! तब तो चारों ओर तूही तू दिखाई देगा। भला! यह तो बता कि भरतमुनि क्योंकर हमें प्रसन्न करेंगे?

दमनक। हम भी तो यही कहने के लिए आए हैं।

इन्द्र। हां हां! इसे जल्दी से कह डाल!

दमनक। फिर वही जल्दी? तो फिर हम सब भूल जायंगे

इन्द्र। (मन में) हे राम! यह कैसा दुष्ट है? (प्रगट) अच्छा! अब जल्दी न करेंगे।

दमनक। आपकी जय होय, तो फिर सुनिए—

नाटक नाटक नाटक नाटक।
रूप का हाटक रस का फाटक।
तम का ?टक दुख का छांटक।
विरहा त्राटक आनंद चाटक॥

इन्द्र। अहा! तुझे तो मुनिवर ने एक सङ्ग यमक अनुप्रास की रासही बना दिया है। अच्छा हम भी तुझे आज 'कविरत्न' की पदवी देते हैं।

दमनक। (प्रणाम करके) महाराज का भला होय। हे देव कविरत्न तो हम येही। जो और कुछ मिलता तो बहुत अच्छी बात होती खैर।

इन्द्र। अच्छा २ फिर देखा जायगा। हां यह तो बता कि

भग्नमुनि ने ऐसी अपूर्व विद्या कहां से पाई ?

दमनक । (मन में) वाह ! अच्छे प्रपञ्ची से काम पड़ा। थकते २ सिर घूमने लगा। न जानें कब पल्ला छूटैगा। (डर कर) अरे ! फिर वही बात ! जो यह हमारे मन की बात जान कर कोई शाप वाप देवैठें तब ? अच्छा अब कभी ऐसा न सोचेंगे। (प्रगट) सरस्वती माई ने दी है। बस इसीसे आपकी सब अलाय बलाय उड़ जायगी।

इन्द्र । ठीक है। भला तू अपनी बनाई कोई कविता तो पढ़?

दमनक । जो आज्ञा (उछल कर बगल बजाता हुआ) किन्तु वाह २ किये जाइयेगा नहीं तो रूपक न बंधेगा। सुनिये तो सही,कैसा कठिन काम किया है। हूं उंउंउं (सुर साध कर गाता है)।

सांझ सवेरे उठके हलुआ पूरी खाओ।
दूध मलाई रबड़ी से भुजडंड मुटाओ ॥
पान चाभ सानीसा दोनों गाल फुलाओ।
पहलवान बन बेगि असुरगन मारि गिराओ॥
याही विधिसों अभी जाय प्यारी को लाओ।
सुख दुख सबै समान होय मङ्गल तुम गाओ ॥

इन्द्र । (हँस कर) अहा हा हा ! क्या कहना है बहुतही अच्छी कविता है। तूने तो रीति,नीति,उपदेश आदि के मसाले डाल कर साहित्य और सङ्गीत की खिचड़ी

पका डाली। अच्छा अब जाकर मुनिवर से शीघ्र आने के लिए निवेदन कर ।

दमनक । (मन में) हाय ! इतना सिर खपाने पर भी यही फल मिला ! बस ! हम इधर से भी गए और उधर से भी। यह सब मरने के पहिले सन्निपात के से लच्छन हैं। हमने वैद्क की पोथी में देखा है कि 'प्रतिज्ञा वागभट्टस्य दौड़धूपी न जीवति,' तो न जाने कब कहां पर प्रान निकल जायं, इसलिये चलती बेर मार्ग में अपने लिये एक ठंढी चिता चुनते जायँगे।

इन्द्र । क्यों रे दमनक ! तू खड़ा खड़ा क्या बड़बड़ा रहा है? एं ! तेरे मुख पर एकाएक उदासी कैसे छागई ?

दमनक । (झुंझला कर) केवल आपकी उदासी देखकर मेरे मुखड़े पर भी उदासी छागई ।

इन्द्र । (हँस कर) क्या वही तो तेरे सिर नहीं चढ़ बैठी ?

दमनक । लच्छन तो ऐसेही जान पड़ते हैं।

इन्द्र । तो अब हमने अपनी बला तेरे सिर टाल कर छुट्टी पाई ।

दमनक । (घबराकर) अरे बाबारे ! मरे मरे ! हे महाराज आप ब्रह्महत्या से भी नहीं डरते ? इस गरीब दुर्बल ब्राह्मण का प्रान लेने से आपका क्या भला होगा ? हमारी दशा देखकर दया करिये । किसी तरह पीछा छोड़िये। अब हम कभी यहां न आवेंगे। अपराध क्षमा

करके अपनी अलाय बलाय हमारे सिर से फेर लीजिये। हाय! हाय! यह बिरह का बोझा कौन ढोता फिरैगा? हम दब मरैंगे, यह हमसे न सम्हलैगा।

इन्द्र। (हँस कर) क्या यह लकड़ी के बोझे से भी गुरु तर है?

दमनक। गुरुवर नहीं तो शिष्यवर अवश्य है।

इन्द्र। तो ले इस झंझट से तेरा छुटकारा होगया।

दमनक। (प्रसन्न होके उछल कर) आपकी जय होय अब हमारे जी में जी आया (गया)

इन्द्र। अरे दमनक! अरे यह तो भागा। अहा! कैसा सूधा बालक है? महर्षियों के स्वभाव भी कैसे उदार और गंभीर होते हैं कि ऐसे ऐसे जड़ के सङ्ग भी माथा खाली करते करते अन्त में उसे चैतन्य बना देते हैं। (ठहर कर) अरे अभी तक इसकी बातों से ध्यान बंटा हुआ था, पर अब फिर वही उदासी सामने घूमने लगी।

(नेपथ्य में)

राग गौरी।

कमलवन सांझ होत कुम्हिलाने।
बिरहताप पावन की सुधि करि चकवा अति अकुलाने॥
बिकल भये मधुकर रस कारन पंकज माहिं समाने।
प्रिय बिछोह की भांति दुसह दुख और नाहिं जियजाने॥

इन्द्र। हा! यह किसने कटे पर नोन छिरका? उसने तो अच्छा गाया, पर हमें तो यह चोट पर चोटसी लगी।

हां क्या कहा? (सोच कर) बहुत ठीक अब समझे

(प्रिय बिछोह की भांति इत्यादि पढ़ता है)

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल। (आगे बढ़कर) स्वामी की जय होय।

इन्द्र। (चैांक कर) क्या है पिंगाक्ष!

द्वारपाल। हे नाथ! देवताओं के गुरू और स्वर्ग के मंत्री वृहस्पति का भेजा एक दूत आया है।

इन्द्र। क्या संदेसा लाया है?

द्वारपाल। यही कि "आज कल्पवृक्षवाटिका में सब देवता एकत्र होंगे,इसलिए प्रार्थना की है कि सन्ध्या पीछे वहां पर श्रीमान भी अवश्य अपने सिंहासन पर बिराजमान हों।

इन्द्र। अच्छा। उससे कहदो कि हमने निमंत्रण स्वीकार किया।

द्वारपाल। जो आज्ञा (गया)

इन्द्र। यद्यपि जब से प्यारी का बिछोह भया है तब से हम सभा में नहीं बैठे हैं, पर इससे हमारी निन्दा छोड़ कर बड़ाई कोई भी नहीं करता। हमारे ऐसे मनुष्य को किसी अवस्था में भी कर्त्तव्य से हाथ न खैंचना चाहिये। भरतमुनि के उपदेश का भी यही निचोड़ है। पर क्या करें, चित्त जब विकल होता है तो एक नहीं सुनता। (टहर कर) देखो! देखते देखते

आज का दिन भी बीत गया। नजानै प्यारी बिना कितने दिनों तक योंही जाग जाग कर रात काटनी पड़ैगी। हा! (उठ कर) तो अब चलैं,सभा का समय आ पहुंचा।

(प्रिय बिछोह की भांति इत्यादि पढ़ता हुआ जाता है)

(परदा गिरता है)

इति छठवां दृश्य।

सातवां दृश्य।

(स्थान कल्पवृक्षवाटिका)

(स्फटिक के चौतरे पर जड़ाऊ सिंहासन बिछा है और उसके दोनो बगल रत्नों की दो चौकियों पर दाहिनी ओर बृहस्पति और बाईं ओर कार्त्तिकेय बिराजमान हैं तथा दोनो पट्टी कतार बांधे हुए देवगण हाथीदांत की कुर्सियों पर बैठे हैं)

विद्याधर।

अहो अबै लगि सभामाहिं सुरराज न आये।

किन्नर।

सचीबिरह के दुसह ताप तपि कित भरमाये॥

सिद्ध।

कहो जाय कोउ ढूंढ़ै वन वन सुरनायक को।

यक्ष।

बिना इन्द्र के या सिंहासन के लायक को॥

गुह्यक।

आवत ह्वैहैं धरहु धीर अबहीं सुरनायक।

विश्वेदेव।

जिनको सहज सुभाव सबै सुखमा-परिचायक॥

अग्नि।

यज्ञभाग-भाजन सुरेस जीवन-सुख-सागर।

वरुण।

कित बिलमाये बिसरि नेह देवन को नागर॥

धन्वन्तरि।

अबला को बल पतिहि सोऊ या विधि अकुलाने।

कुवेर।

होनहार बलवान मिलै कछु नहिं पछिताने॥

सूर्य्य।

जारि छार करि डारहु दानव-वन समुदाई।

चन्द्रमा।

सीतल सुरपुर करहु स्वर्ग की श्री घर लाई॥

अश्विनीकुमार

नसै विरह को रोग शतक्रतु को सबभांतिन।

करैं बहुरि हम महामोद मंगल जुरि पांतिन॥

(नेपथ्य में)

"निसि दिन जुग कर जोरि उमाकों हमहुं मनातीं" ।

(सब कान लगा कर सुनते हैं और उर्वशी, मेनका, रंभा, तिलोत्तमा आदि अप्सरागन आकर सिंहासन के सामने दूर खड़ी होती हैं)

सब अप्सरा । (देवताओं को प्रणाम कर)

निसि दिन जुग कर जोरि उमा को हमहुं मनातीं ।
पुनि सुरपुर सुख करन हेत अभि लाख जनातीं ॥

वृहस्पति ।

करहु अबै उद्धार वेगि सुरपुर की श्री को
हरहु सकल संताप सहसलोचन के जी को ॥

कार्त्तिकेय । (शक्ति उठा कर)

अबै असुरकुलनारिन को विधवा करि डारैं ।
उठहु उठहु अब वीर सची को वेगि उबारैं ॥

सब देवता । (अपने २ शस्त्रों को हाथ में उठा कर एक सङ्ग कहते हैं)

अबै असुरकुलनारिन को विधवा करि डारैं ।
उठहु उठहु अब वीर सची को वेगि उबारैं ॥

(सब क्रोध नाट्य करते हैं)

(नेपथ्य में)

हे देवताओं तुम्हीं लोगों के बाहुबल के भरोसे हम अभी तक जी रहे हैं । अहा ! इन अमृत से बचनों को सुन

कर हृदय कैसा शीतल हुआ है? (उठहु उठहु अब वीर, इत्यादि पढ़ता हुआ इन्द्र आता है और सब देवता उठ कर प्रणाम करते हैं तथा इन्द्र के बैठने पर सब बैठते हैं)

इन्द्र । (बैठकर और हाथ में वज्र लेकर)

अबै असुरकुलनारिन को विधवा करि डारौं ।
उठहु उठहु अब वीर सची को बेगि उबारौं ॥

(सब देवता अपना २ शस्त्र उठाकर क्रोध नाट्य करते हैं)

बृहस्पति । हे पुरंदर! शांत होइए । अब महारानी के उद्धार और राक्षसों के संहार होने में बहुत विलंब नहीं है। क्योंकि भक्तजनों के तीनों तापों के दूर करनेवाले भगवान कमलापति शीघ्रही हमलोगों का क्लेश दूर करैंगे। देखिये—

सोरठा ।

हरिपदपदुमपराग बंदौ जुग कर जोरि कै ।
हेरि सहित अनुराग सकल मनोरथ देत जो ।

सबदेवता । (एक सङ्ग) सत्य है! सत्य है!!

इन्द्र । ऐं। अभी तक मुनिवर भरताचार्य ने कृपा क्यों नहीं की? उनके आने में इतना विलंब क्यों हो रहा है?

कार्त्तिकेय । वह सुधर्म्मा सभा में नाट्यशाला की रचना कर रहे हैं। उसे समाप्त करके तुरन्त आवैंगे। आप चिन्ता न करैं, वरन तब तक सभा में विराजमान रह कर आप हमलोगों का खेद दूर करैं।

सबदेवता । क्योंकि नाथ ! आपही के मन बहलाने के लिए आज यह सभा की गई है कि जिसमें आपका चित्त प्रसन्न हो और हमलोगों के नेत्र सुफल हों ।

(नेपथ्य में)

राग ईमन ।

को गुनगाइ सकै तुव माया ।
तीनलोक हिय ध्यान धरै नित पाइ अपूरब काया ॥
जापै ढरौ करौ तेहि पूरो करि निज हाथन छाया ।
नौमि भारती भाषा बानी सरस्वती विधिजाया ॥

इन्द्र । अहा ! नाम लेतेही भरतमुनि आ पहुंचे (चौंक कर प्रसन्नता से) ऐं ऐं !! हमारी दाहिनी भुजा क्यों फड़की ?

वृहस्पति । हे देवेन्द्र ! अब दुर्दिन की अंधेरी रात कट-गई । केवल सुखसूरज के उदय होने की देरी है ।

सब देवता । बहुत देरी नहीं है, बहुत देरी नहीं है ।

(दमनक के सङ्ग बीणा लिए भरतमुनि आते हैं, उन्हें देख इन्द्र के सहित सब देवता उठकर प्रणाम करते हैं और वृहस्पति के समीप उनके बैठने पर सब बैठते हैं। भरत के पीछे दमनक खड़ा होता है)

इन्द्र । मुनिवर । आपका दर्शन कर आज स्वर्गवासी जन अतिशय कृतार्थ हुए ।

भरत । हे पुरन्दर ! अब तुम अपने मन से खेद दूर करो ।

हम सुधर्मा सभा में नाट्यशाला की रचना कर और पात्रों को वेशविन्यास करने की आज्ञा देकर केवल तुम्हें सम्वाद देने के लिए आए हैं। अब बहुत देर करने का कोई प्रयोजन नहीं है। बस! सब देवताओं के सङ्ग चलकर अपने चित्त को प्रसन्न और प्रफुल्ल करो।

इन्द्र। (हर्ष से) अहा! हमारे भाग्योदय होने में अब सन्देह नहीं। क्योंकि जिन सहस्रलोचनों से शोकाश्रु बहते थे, उन्हींमें एकाएक आनन्दाश्रु छागए।

सबदेवता। महाराज! आपके विरहताप दग्ध हृदय को भरताचार्य्य निःसन्देह शीतल और प्रफुल्लित करेंगे।

भरत। अच्छा तो अब तुम लोग सुधर्मा सभा में चलकर अभिनय देखो।

इन्द्र। जो आज्ञा।

(एक ओर से दमनक के साथ भरत और दूसरी ओर से इन्द्रादि देवताओं का प्रस्थान)

इति सातवां दृश्य।

॥ श्रीः ॥

नाट्यसम्भव

-:का:-

अङ्कावतार* ।

(स्थान सुधर्म्मा सभा के सामने रङ्गशाला)(१)

(रङ्गशाला का परदा उठता है और गन्धमादन पर्वत के एक सुप्रशस्त शृङ्ग पर दैत्यराज बलि टहलता हुआ दिखलाई देता है, जिसे देख देवता बड़े चकित होते हैं)

बलि। (आपही आप) क्या कारण है कि हमारा दूत मसुचि अभी तक इस बात की सोध लेकर न आया कि इन्द्राणी के हरे जाने से देवताओं—विशेष कर इन्द्र की अब क्या दशा है और स्वर्ग का विजय कर लेना अब कितना सहज है! (ठहर कर टहलता हुआ) अहा! वह दिन भी हमारे लिए कैसे आनन्द का था कि जिस दिन हम गुरुवर शुक्राचार्य्य की संमति

* इस 'अङ्कावतार' के पहिले जो छः अङ्क छपे हैं, उन्हे इस (अङ्कावतार) की 'पूर्वपीठिका' और अन्त के सातवें अङ्क को 'उत्तरपीठिका' समझनी चाहिये।

(१) सुधर्मा सभा भलीभांति सजी हो, इन्द्रादिक देवता, जोकि 'कल्पवृक्ष-वाटिका' में थे अपने अपने स्थानों पर सुशोभित हों और सामने वाली 'रङ्गशाला' में भरताचार्य इस 'अङ्कावतार' का अभिनय दिखावें।

से कुछ चुने हुए दैत्यों को लेकर धड़धड़ाते हुए स्वर्ग में घुस गए और जब तक देवतागण सामना करने के लिये तैयार हों, इन्द्राणी को हरण करके अपने शिविर में लौट आए। ऐसा करने से एक तो इन्द्र से उसकी पहिली करनी का भरपूर बदला लेलिया गया और दूसरे यह समझा गया कि जब स्त्री के हरे जाने से वह बिल्कुल बेकाम होजायगा और उसके अकर्मण्य होने से देवताओं के भी हाथ पैर ढीले होजायंगे तब स्वर्ग का लेलेना हमारे लिए बहुतही सहज होगा किन्तु नमुचि के लौटने में इतनी देर क्यों होरही है?

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल। (आगे बढ़ और बलि को प्रणाम करके) स्वामी की जय होय। दैत्येश्वर! स्वर्ग की टोह लेने के लिए जो नमुचि भेजा गया था, वह वहां का समाचार ले आया है और द्वार पर ठहरा हुआ स्वामी के दर्शनों की उतावली जतलाता है।

बलि। (गले से रत्नमय हार उतार कर द्वारपाल को देता हुआ) अरे, वज्रदंष्ट्र! इस खुशखबरी के देने का यह तुझे पारितोषिक दिया जाता है।

वज्रदंष्ट्र। (हार लेकर गले में पहिरता हुआ) आपकी जय होय। भगवान महाकालेश्वर आपको देवताओं पर विजय दें।

बलि । वज्रदंष्ट्र ! तू अभी नमुचि को हमारे पास भेज, क्योंकि उससे मिलने के लिए हम अत्यन्त उत्कंठित हो रहे हैं।

वज्रदंष्ट्र । जो आज्ञा (गया)

नमुचि । (आता हुआ) अहा ! हमारे स्वामी का मुख इस समय चिन्तायुक्त होने पर भी कैसा प्रसन्न देख पड़ता है और उस समय तो इस प्रसन्नता की सीमाही न रहैगी, जब हम स्वर्ग विजय कर लेने के सम्बन्ध में सुसमाचार सुनावैंगे (आगे बढ़कर) राजाधिराज दैत्येश्वर की जय होय।

बलि । (हर्ष से) अहा ! नमुचि ! तुम भले आए। इस समय हम तुम्हारीही बात सोच रहे थे। (हंसकर) तुमने स्वर्ग की टोह लगा लाने में इतनी देर क्यों लगाई ? क्या किसी अप्सरा के जंजाल में तो नहीं फंस गए रहे ?

नमुचि । प्रभो ! आपका दास (मैं) स्वामी के कार्य्य में अवहेला करने या किसी दूसरे जंजाल में फंसने वाला नहीं है। हम तो मायाविद्या से अपने को इस भांति छिपा कर स्वर्ग में गए थे कि हमारे वहां जाने की गन्ध तक किसी देवता ने न पाई होगी। किन्तु देर होने का कारण यह है कि जबतक हमने भली भांति देवताओं का हाल जान न लिया, लौटने

की इच्छा को मनहीमन दबा रक्खा था।

बलि। हमारे राजनीतिज्ञ दूत के लिए ऐसा विचारना बहुतही उचित हुआ।

नमुचि। स्वामी के इस बड़प्पन देने से सचमुच हम आज धन्य हुए।

बलि। अच्छा, अब यह बतलाओ कि स्वर्ग की क्या अवस्था है?

नमुचि। हमारे पक्ष में वहां की दशा बहुतही अच्छी और अनुकूल है। राजनीति के जिस जटिल सूत्र पर भरपूर विचार करके इन्द्राणी हरी गई, वह अब फल देने योग्य होगया है।

बलि। (प्रसन्नता से) ऐसा! तो वहां का वृत्तान्त स्पष्ट रीति से कहो।

नमुचि। जो आज्ञा, सुनिए। वनिता के विरह में इन्द्र अब बिल्कुल "नहीं" के बराबर हो रहा है, ऐसी अवस्था में उसके किए कुछ भी न होगा। तो जबकि राजा कीही यह शोचनीय दशा उपस्थित है, तब उसके अनुचरों की क्या सामर्थ्य, जो वे कुछ करधर सकेंगे! तात्पर्य यह कि यह अवसर स्वर्ग पर चढ़ाई करने और उसे बात की बात में बिना परिश्रम लेलेने के लिए सब भांति अनुकूल और उपयुक्त है।

बलि। (प्रसन्नता नास्य करता हुआ) आज इस सुसम्बाद

सुनाने के लिए तुम्हें हम अपनी शतघ्नी देकर पुरस्कृत करते हैं ।

नमुचि । (शतघ्नी लेकर अभिवादन करता हुआ) जय होय दैत्येश्वर की । प्रभो ! आप जैसे प्रतापी वीर अपने अनुयायी वीरों का उत्साह इसी भांति बढ़ाते हैं ।

(नेपथ्य में वीणा की झनकार)

(वलि और नमुचि कान लगा कर सुनते हैं)

वलि । यह तो देवर्षि नारद की वीणासी प्रतीत होती है ।

नमुचि । जी हां ! किन्तु इस समय इनका यहां आना हमें तो नहीं सुहाया ।

वलि । यह क्यों !

नमुचि । इसलिए कि यह देवताओं के पक्षपाती हैं, अतएव देवर्षि कहलाते हैं, सो इस समय इनका यहां आना स्वार्थरहित कदापि न होगा ।

वलि । यह तो तुम ठीक कहते हो, किन्तु इनके तपोवल के आगे त्रैलोक्य में कौन ऐसा है जो इनका अनादर कर सके !

नमुचि । यही तो कठिनाई है ।

(नेपथ्य में वीन के साथ खम्माच रागिनी में)

समुझ मन कहा होइगो आगे ।

अवहीं तौ समुझत नहिं एकहु, एरे मूढ़ अभागे ॥

कियो निकास काम मनमानो, मोह वारुनी पागे।
कहा होइगो, सो नहिं जानत, या सुपने तें जागे॥
जगतजाल तें होइ निवेरो, मिलै सुगति दुक मांगे।
असरन सरन गुविन्द चरन तें, जो अनुरागहि लागे॥

(दोनों कान लगाकर सुनते हैं)

नमुचि। देखिए! इस निर्गुण भजन में स्वार्थ की बातें कितनी भरी हुई हैं?

बलि। तथापि देवर्षि का उपकार इस वंश पर जैसा है, उसके लिए ये सर्वथा पूजा करने योग्य हैं।

नमुचि। (आपही आप) ऐसी दुर्बुद्धि ने तुमको घेरा है तो तुम अपना कोई न कोई काम आज विना विगाड़े नहीं रहते।

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल। (आगे बढ़कर) महाराज की जय होय! हे प्रभू! द्वार पर देवर्षि नारद उपस्थित हैं।

बलि। उन्हें अति शीघ्र आदर से लेआव।

द्वारपाल। जो आज्ञा।

(जाता है और नारद के साथ तुरन्त आता है)

द्वारपाल। देवर्षिवर! यह देखिए, दैत्यराज आपके दर्शनों के लिए किस उत्कंठा से आगे बढ़ रहे हैं।

नारद। तूने सत्य कहा, वज्रदंष्ट्र! (मन में) अहा! देवताओं का मानमर्दन करनेवाला दैत्यकुलभूषण बलि

बड़ा ब्रह्मण्य है। यद्यपि हमारे आने से कुढ़कर इसके सहचर नमुचि ने इसे बहुत कुछ ऊंच नीच समझाया, जोकि हमने ध्यान से जान लिया है, पर फिर भी यह ऐसी भक्ति से हमसे मिला चाहता है कि इसे हृदय से धन्यवाद दिए बिना रहा नहीं जाता।

वज्रदंष्ट्र। (आगे बढ़कर) स्वामी की जय होय! हे प्रभू! तपोधन देवर्षिवर्य्य आते हैं।

बलि। (आगे बढ़कर) देवर्षि महोदय को हम प्रणाम करते हैं।

नमुचि। तपोधन! हमभी मत्था टेकते हैं।

नारद। (नमुचि की ओर न देखकर) दैत्यकुलभूषण बलिराज! रमापति दिन २ तुम्हारा प्रताप बढ़ावें।

वज्रदंष्ट्र। (आपही आप) अहा! ऋषिजी ने बहुत अच्छा आशीर्वाद दिया (गया)

नमुचि। (आपही आप) ओहो! यह आशीर्वाद तो बड़ा बिलक्षण है!

बलि। (प्रणाम करके) ब्रह्मनन्दन! यह तो आशीर्वाद नहीं, आपने वरप्रदान किया।

नारद। दैत्यकुलदीपक, भक्तराज, प्रल्हाद के महाप्रतापी ब्रह्मण्य पौत्र को जो कुछ दिया जाय, थोड़ा होगा।

बलि। इस कृपा से हम अत्यन्त कृतार्थ हुए। देवर्षिवर! कृपा कर इस आसन पर बिराजिए।

नारद। (बैठकर) दैत्यराज! तुम भी विराजो।

बलि। जो आज्ञा।

(नारद के सामने विनीत भाव से बलि बैठता है, उसके बगल में नमुचि खड़ा होता है और यह दृश्य देखकर इन्द्रादिक देवता बड़े चकित होते हैं)

नारद। दैत्यराज! आज इस समय हम तुम्हारे पास किसी कार्यवश आए हैं।

नमुचि। (आपही आप) जो हमने सोचा था, सोही भया!

बलि। (हाथ जोड़े हुए) आज्ञा कीजिए।

नमुचि। (आपही आप) इतनी उदारता अच्छी नहीं।

नारद। भक्तराज, ब्रह्मण्य, प्रल्हाद के वंश में जन्म लेकर तुमने यह क्या बीरोचित कर्म किया, जो एक अवला पर बल प्रयोग किया!

नमुचि। (मनही मन) हाय हाय! वही इन्द्राणी का प्रसङ्ग। जान पड़ता है कि इतना परिश्रम व्यर्थ जायगा और बना बनाया सारा खेल चौपट होगा।

बलि। (आश्चर्य से) हमारे कुल में अभी तक अवलाओं पर बलात्कार करनेवाला कोई नहीं हुआ, फिर हमारे लिए यह उपालंभ क्यों?

नारद। क्यों, तुम बलपूर्वक इन्द्राणी को हरण करके नहीं लेआए हो?

नमुचि। (आपही आप) अब क्योंकर हम अपने मन

को विश्वास दिलावें कि हमारा सोचना ठीक न था।

बलि। हमारे जान यह बलात्कार नहीं, अदले का बदला है।

नमुचि। (आपही आप) खूब कहा, और सचही तो कहा। देखें इसका क्या उत्तर मिलता है।

नारद। यह क्योंकर।

बलि। आश्चर्य्य है कि आपको वह बात भूल गई। अस्तु, सुनिए। जिस समय वाराह भगवान से हिरण्याक्ष के मारे जाने पर हमारे प्रपितामह हिरण्यकश्यप तप करने के लिए मन्दराचल पर चले गएथे,उस समय सूना घर देख कपटी इन्द्र हमारी प्रपितामही (हिरण्यकश्यप की स्त्री) को दैत्य नारियों के साथ बांध कर स्वर्ग को नहीं लेचला था?

नारद। अवश्य इस बात को हम स्वीकार करते हैं। किन्तु क्या तुम्हें यह बात अभी तक नहीं विदित हुई है कि दुराचारी इन्द्र की इस कर्तूत पर हमें बड़ी घृणा हुई थी और हमने बीच मार्ग में पहुंच, उसे धिक्कार कर तुम्हारी परदादी कयाधू को अन्य दैत्यनारियों के सहित उसके हाथ से छुड़ा लिया था।

बलि। (नम्रता से) यह बात हमें स्मरण है और जब तक हमारे कुल का अस्तित्व संसार में रहेगा, हमारे कुल में कोई भी क्यों न रहे, आदर के साथ

आपके इस उपकार को मानेगा ।

नारद । यह उत्तर तुमने प्रतापी बलि के योग्यही दिया ।

बलि । और यह बात भी हम जानते हैं कि आपही की अनन्त कृपा के कारण दैत्यकुलपावन हमारे पितामह प्रल्हादजी ने जन्म लिया था ।

नारद । तो तुम हमारे उस उपकार को मानते हो ?

नमुचि । (आपही आप) बस, अब मतलब निकला चाहता है ।

बलि । अवश्य । और हमारे वंश में जो होगा, आपकी इस कृपा को कभी न भूलेगा ।

नारद । तो हमारे उस उपकार का इस समय तुम कुछ प्रत्युपकार कर सकते हो ?

नमुचि । (आपही आप) अब इतनी भूमिका क्यों ?

बलि । आज्ञा कीजिए ।

नमुचि । (आपही आप) ऐसी उदारता से बुरा परिणाम होना चाहता है ।

नारद । जिस भांति हमने इन्द्र के हाथ से कयाधु को छुड़ाया था, उसी भांति आज तुम्हारे हाथ से हम इन्द्राणी को छुड़ाया चाहते हैं। इन्द्र से तो बदला तुमने चुकाही लिया, फिर व्यर्थ अबला को अवरुद्ध कर रखना तुम्हारे जैसे प्रतापी वीर के लिए शोभा नहीं देता ।

नमुचि । (आपही आप) चलो, स्वार्थ की बात अब खुल गई, देखें, दैत्यराज इसका क्या उत्तर देते हैं ।

बलि । आपका पूर्व उपकार स्मरण कर हमें यही उचित जान पड़ता है कि बिना कुछ सोचे विचारे हम आपकी इस आज्ञा को सिर माथे पर चढ़ावें ।

नमुचि । (आपही आप) और अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारो !

इन्द्र । धन्य, देवर्षि ! तुम सच मुच देवर्षि हो ।

सबदेवता । इसमें क्या सन्देह है ।

नारद । तो अब विलंब करने का कोई प्रयोजन नहीं, तुम झटपट इन्द्राणी को हमारे हवाले करो और इस उदारता के लिये हम तुम्हें हृदय से आशीर्वाद देते हैं कि तुम एक दिन अचिन्त्यपूर्व अभ्युदय को पाओगे ।

बलि । आपका आशीर्वाद अवश्य वर का काम करेगा। (नमुचि से) तुम अभी जाकर बड़े आदर के साथ इन्द्राणी को लेआओ ।

नमुचि । जो आज्ञा (आपही आप) हा! इस अनर्थ कर्म के संपादन करने के लिये हम्ही रहे । (गया) ।

बलि । आप निश्चय जानें, केवल अवरुद्ध कर रखने के अतिरिक्त और इन्द्राणी का कुछ भी अपमान नहीं किया गया है ।

नारद । तुम्हारे जैसे महाप्रतापी से अबला का अपमान

कदापि नहीं होसकता ।

सभदेवता । देवर्षि के वचन सत्य हैं ।

इन्द्र । ऐसे उदारहृदय शत्रु को हृदय से धन्यवाद दिए विना नहीं रहा जाता ।

सभदेवता । सत्य है, सत्य है ।

(नेपथ्य में–राग मारू)

विरह की पीर सही नहिं जाय ।
नैनन तें जलधार बहत है, निकरत मुख तें हाय ॥
चलत उसासें प्रलयकारिनी मदन तपावत आय ।
विकल प्रान अकुलान लगे अति निकसन चहत पलाय॥

इन्द्र । हा हन्त, हा हन्त ! यह तो इन्द्राणी के बोल हैं ।

(घबराकर उठा चाहता है)

वृहस्पति । सावधान, सुरेश ! यह नाटक है ।

इन्द्र । हाय ! नाटक में इतनी सजीवता ! हे भरताचार्य्य ! तुम धन्य हो ।

(नेपथ्य में पुनः गान)

राग विरहिनी ।

पिया विनु मदन सतावत गात ।
हाय, विरहिनी तें बहुभांतिन सबै करत उतपात ॥
मदन,वसंत,चंद्र,अरु चांदनि,सुरभि पवन सबभांति।
कोकिल,वन,उपवन,सर,सरिता अरु नभ बककी पांति॥

सवै ताकि उर सूल चलावत, दया न आवत नेक।
हा विधिना विरहिनी अभागी मैंही जग में एक॥

इन्द्र। नहीं प्रिये! दूसरा अभागा मैंभी अभी जीता हूं

(लम्बी सांस लेता है)

(विरहिनियों कासा भेस बनाए दैत्यनारियों से घिरी हुई इन्द्राणी आती है, और उसके पीछे २ सिर झुकाए हुए नमुचि)

इन्द्राणी। देवर्षि! मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूं।

(सब दैत्यनारी सिर झुकाती हैं)

नारद। पुलोमजे! चिरसुखिनी भव।

(इन्द्राणी को देखतेही इन्द्र बावला हो आसन से उठ खड़ा होता है और वृहस्पति उसका हाथ थाम कर बैठाते हैं)

वृहस्पति। देवेन्द्र! सावधान होवो! यह भरताचार्य्य की ज्वलन्त कृति—नाटक है।

इन्द्र। (बैठकर) हा! पुलोमजे! यह दृश्य क्या सत्य है! क्या देवर्षि इसी भांति तुम्हारा उद्धार करेंगे?

नारद। इन्द्राणी! तेरा यहां किसी प्रकार अपमान तो नहीं हुआ?

इन्द्राणी। केवल पतिवियोग और स्वर्ग से यहां लाई जाकर अवरुद्ध रहने के अतिरिक्त और मेरा किसीने कुछ भी अपमान नहीं किया।

वलि। (नारद से) अब तो आप सन्तुष्ट हुए होंगे।

नारद । (उठकर और बलि को हृदय से लगाकर) दैत्यराज ! तुम्हारे इस महत्व की हम रोमरोम से प्रशंसा करते हैं ।

बलि । अब हम कृतार्थ हुए ।

नमुचि । नहीं,वरन अपना काम आप बिगाड़कर हीन हुए

इन्द्र । ऐसे उदार शत्रु से बैर बिसाह कर हम भी आज धन्य हुए ।

सबदेवता । सचमुच बलि की शतमुख से प्रशंसा करनी चाहिए ।

इन्द्र । अवश्य, अवश्य ।

नारद । तो अब हम इन्द्राणी के साथ बिदा होते हैं ।

बलि । कृपा कर यह तो बतलाते जाइए कि हम देवताओं को निकाल कर स्वर्ग अपने आधीन किया चाहते हैं, इसमें तो आप कोई अड़ंगा न लगावेंगे न ?

नारद । इन बातों से हमें कुछ प्रयोजन नहीं । केवल अबला के उद्धार करने और भक्तराज प्रल्हाद के बंशधर (तुम्हारे) के निर्मल यश में धब्बा न लगने पावे इसीलिए हम यहां आए थे ।

बलि । आपका आना हमारे लिए अच्छाही हुआ । (प्रणाम करता है)

नमुची । (आपही आप) बहुत बुरा हुआ ।

(आशीर्वाद देकर एक ओर से इन्द्राणी के साथ

नारदजी जाते हैं और दूसरी ओर से नमुचि तथा दैत्य-नारियों के साथ वलि)

रङ्गशाला का परदा गिरता है ।

इति अङ्कावतार ।

सातवां दृश्य ।

(स्थान सुधर्म्मा सभा)*

(इन्द्रादिक देवता अपने२ स्थान पर बैठे हैं)

इन्द्र । महामुनि भरताचार्य्य के इस सजीव नाटक का क्या परिणाम होगा, कुछ समझ नहीं पड़ता । यद्यपि लोग इसे निरा नाटक बतलाते हैं, जो अभी भरत ने दिखलाया है, किन्तु हजार समझाने पर भी चित्त इसे निरा रूपक नहीं स्वीकार करता । (सोच कर) किन्तु यह क्या । यदि इसे रूपक न माने तो क्या माने ? यहां के रङ्गस्थल में वलि, नमुचि, वज्रदंष्ट्र, नारद और इन्द्राणी का आना क्योंकर सम्भव है ? हा ! कुछ समझ नहीं पड़ता कि आज भरत मुनि ने कैसा इन्द्रजाल दर्साया !

* अङ्कावतार के अभिनय को समय जिस प्रकार सब देवता बैठे थे, उसी भांति बैठे हों, और वहीं पर इस सातवें दृश्य का अभिनय हो ।

बृहस्पति। निश्चय है कि इस विषम समस्या को अभी भरत या नारद यहां आकर सुलझादेंगे।

(नेपथ्य में बीन की झनकार)

इन्द्र। लीजिए, नाम लेतेही देवर्षि नारदजी आपहुंचे, यह उन्हीं की बीन बजती है।

सब देवता। ठीक है, ठीक है।

(नेपथ्य में गीत)

(सब देवता कान लगा कर सुनते हैं और इन्द्र आश्चर्य नाट्य करता है)

राग विरहिनी।

प्रीतम से कोउ जाय कहै रे।
बिन देखे नहिं परत चैन, मम नैनन नीर बहै रे॥
तरफरात जिय छिन छिन आली, केहि विधि चैन लहै रे।
पड़ी विकल मंझधार विरहिनी, को अब बांह गहै रे॥

इन्द्र। अरे! यह तो स्पष्ट इन्द्राणी का बोल है? तो क्या इसे भी मिथ्या मान लें! हा, दुर्दैव!

(नेपथ्य में पुनः गान)

राग हम्मीर।

पिय बिन सजनी धड़कै छतियां।
नहिं अजहुं आय उर लाय लिया,
का बिसरि गए हमरी बतियां॥

नहिं पड़त चैन दाहत है मैन,
छिन छिन कछु करत नई घतियां।
छुटि खान पान व्याकुल है प्रान,
तलफत बीतत सिगरी रतियां॥

इन्द्र। (देवताओं की ओर देखकर) बन्धुवर्ग! क्या यह इन्द्राणी का बोल नहीं हैं? और क्या इसे भी हम भरताचार्य्य की कोई माया समझें? (औत्सुक्य नाट्य)

सब देवता। देवेश! कुछ समझ नहीं पड़ता कि भरत ने आज कैसा जंजाल पसारा है।

(द्वारपाल आता है)

द्वारपाल। (आगे बढ़कर) स्वामी की जय होय। हे मघवन्! एक अवगुण्ठनवती स्त्री के साथ देवर्षि नारदजी आते हैं।

इन्द्र। हे पिंगाक्ष! वह स्त्री कौन है?

पिंगाक्ष। महाराज! वह अभी आपके सन्मुख उपस्थित होगी।

इन्द्र। अच्छा, देवर्षि को सादर ले आ।

पिंगाक्ष। (जो आज्ञा)

(जाता है और नारद तथा अवगुण्ठनवती स्त्री के साथ फिर आता है)

इन्द्र। (नारद के साथ घूंघट काढ़े हुई स्त्री को देखकर)

हे मन! अब तू इतना उतावला न हो, सम्भव है कि तेरा संशय अब स्थिरता को प्राप्त होजाय ।

पिंगाक्ष । देखिए, देवर्षिजी यद्यपि वनिता के वियोग में हमारे स्वामी सुरेन्द्र की मुखश्री कुछ मुर्झाईसी प्रतीत होती है, तौभी बालरवि के समान तेजपुञ्ज मुखारविन्द चित्त को कैसा प्रफुल्लित कर रहा है ।

नारद । ठीक है, शतक्रतु की तेजस्विता ऐसीही हैं ।

(नारद के आने पर सब देवता उठ खड़े होते और प्रणाम करते हैं और इन्द्र उन्हें अपने सिंहासन के दक्षिण-भाग में स्थान देता है । फिर नारद के बैठने पर सब बैठते हैं । अवगुण्ठनवती स्त्री सिंहासन के सामने नारद के समीप खड़ी होती है)

इन्द्र । देवर्षिवर्य! आपके आगमन से हम अत्यन्त कृतार्थ हुए।

नारद । (मन में) अवगुण्ठन का माहात्म्यही ऐसा है । (प्रगट) कहो, देवेन्द्र ! प्रसन्न तो हो ?

इन्द्र । आपके आने पर अप्रसन्नता कहां रह सकती है ? (कनखियों से अवगुण्ठनवती की ओर देखता है)

नारद । (मन में) वाहरे स्वार्थ ! अच्छा तो अब इसे क्यों व्यर्थ भूलभुलैयां में भटकावें (प्रगट) क्यों इन्द्र इस समय हम तुम्हारा क्या उपकार करैं ?

इन्द्र । इन्द्राणी के अतिरिक्त और हम कौनसी प्रियवस्तु आपसे चाहें ?

नारद। तथास्तु, यह लो। (स्त्री की ओर देखकर) पुत्री पुलोमजे। अब तू अपने मुखचन्द्र को घूंघट घटा से बाहर निकाल, इन्द्र के नैनचकोरों को आनन्द दे।

(इन्द्राणी घूंघट उलट कर मुख दिखलाती है और इन्द्र आतुरता से आगे बढ़ उसे अपने भुजपाश में भर लेता है। फिर दोनों नारद के चरणों में प्रणाम करके सिंहासन पर दाहिने बाएं बैठते हैं)

नारद। इन्द्र! हम यही आशीर्वाद देते हैं कि आज से तुम दोनों में कभी वियोग न हो।

इन्द्र। इसे वरदान भी कहना चाहिये।

सब देवता। अवश्य, अवश्य।

(आकाश मार्ग से फूल बरसातीं और गाती हुईं उर्वशी, रम्भा, तिलोत्तमा, मेनका, घृताची आदि अप्सराएं आतीं और नारद तथा इन्द्रादि देवताओं को प्रणाम करके फिर गातीं और नृत्य करती हैं)

सब अप्सरा। (नाचती हुईं)

राग सूहा।

अहा! अपूरब नाटक सुख की रासी।
सब सुख दायक, परिचायक मोह बिनासी॥
सुभ पवन बहे, मंगल नव कुसुम फुलाने।
जहं प्रेमी जन के मन मधुकर भरमाने॥

सब मिटै आप सन्ताप, सदा सुख होवै।
छिन में यह मन की सब व्याधिनको खोवै॥

इन्द्र। अहा! इस समय तुम लोगों ने अच्छी नाटक की महिमा गाई।

(आकाश मार्ग में महा प्रकाश होता है और सब उधर देखने लगते हैं)

(आकाशवाणी उसी राग में)

ह्वै मगन लोकत्रय वासी नव रस भीने।
पावैं मन चीते, या अभिनय के कीने॥
मुद मङ्गल बाढ़ैं घर घर सदा नवीने।
दुख दारिद मिटै, रहै सुख सदा अधीने॥

(प्रकाश के साथ आकाशवाणी का अवसान)

इन्द्र। अहा। यह तो भगवती वागीश्वरी ने आशीर्वाद दिया।

नारद। सत्य है, नाटक का ऐसाही महात्म्य है।

(सब अप्सरा गाती हैं)

राग ईमन।

जय जयति जय बानी, भवानी, भारती, सुखकारिनी।
जय जय सरस्वति, भामिनी, भाषा, कलेस-विदारिनी॥
कवि कमलमुख में हरखि निसि दिन रुचिर मोद बिहारिनी।

संगीत अरु साहित्य की महिमा महा विस्तारिनी॥

सब देवता। (हाथ जोड़ कर ऊपर देखते हुए)
जय जय वीनापानि, सरोजविहारिनि माता।
नाटकरूपिनि, देवि, करौ नित सुखद प्रभाता॥
सब की रुचि या माहिं होय, सोई वर दीजै।
कृपा कटाछनि हेरि, वेगि दुख परि हरि लीजै॥

(आकाशवाणी)

ऐसाही होगा, ऐसाही होगा।

(अप्सराएं गाती हैं)

राग विहाग।

मिले, दोउ हरखि भरे अनुराग।
विहंसि विहंसि चितवत चख चंचल अरसि परसि हिय पाग॥
यह जोरी जुग जुग चिरजीवै, प्रेम बीज जिय जाग॥
सहज सनेह सने सुख सेवहिं, निबहै सदा सुहाग॥

इन्द्र। अरी! हमारा सुख चाहनेवालियों! इस समय तुम लोगों की बधाई से हम बहुतही प्रसन्न हुए।

(सभों को आभरण प्रदान करता है)

सब अप्सरा। (अलङ्कार लेकर प्रणाम करके पहिरती हुईं) स्वामी की जय होय। महाराज इसी दिन के लिए हम सब ने भगवती उमा की आराधना की थी

सो भगवती की दया से हमलोगों के मन चीते होगए।

(गाती हैं)

राग कलांगड़ा।

भागतें पायो सुदिन सुहायो ।
कृपा कटाक्षनितें देवी के भयो अहा, मनभायो ॥
फलै वही वरदान वेगि, जो निज मुख बानी गायो ।
सहित सनेह चहूंदिसि घर घर बाजहिं बहुरि बधायो

(नेपथ्य में)

भगवती भवानी और भारती की दया से ऐसाही होगा।

(सब कान लगा कर सुनते हैं और दमनक तथा रैवतक के साथ भरतमुनि आते हैं । इन्द्रादिक देवता उठकर प्रणाम करते हैं और नारद के बगल में भरत के बैठने पर सब अपने२ स्थानों पर बैठते हैं । भरत के बगल में दमनक और रैवतक खड़े होते हैं)

भरत । कहो, देवेश ! अब और कौनसा खेल दिखलाया जाय ।

इन्द्र । मुनिराज ! आप धन्य हैं। आपने आज जैसा सजीव नाटक दिखलाया, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे वाम भाग में सुशोभित है । इससे बढ़कर और कौन खेल होगा ?

सब देवता । कोई नहीं, कोई नहीं ।

दमनक। (चारों ओर आंखें फाड़ फाड़ कर देखता हुआ आपही आप) अहा! गुरुजी की कृपा से वह तमाशा देखा कि जिसका नाम! जो भाग गए होते तो यह आनन्द सपने में तो क्या, मर कर इस स्वर्ग में आने पर भी कदाचित न मिलता। अहा!

नाटक! नाटक!! नाटक!! नाटक!!!
सुख का हाटक, रस का फाटक!!!
नाटक में है, कैसा मजा।
जैसे घी का लड्डू मीठा॥

(लाठी पर ताल देकर गुनगुनाता हुआ)

धिन्ता, धिनान्ता, ताधिन्, धिना।
और नहीं कुछ नाटक बिना॥
धिनक्, धिलक्, तक, धिन्, ताक, ताक।
नाटक बिना है, सब रस खाक॥
ताधिनाधिन्, ताधिनाधिन्, ता।
नाटक का रस पेट भर खा॥
धिन्धिना, धिन्धिना, धिन्धिना, ना।
मजा कहां है, नाटक बिना॥

(सब उसकी अङ्गभङ्गी को देख मुस्कुराते हैं)

इन्द्र। अरे, दमनक! जरा, तू तो कुछ गा!

भरत। वह उजड्ड बालक है, कुछ चपलता न कर बैठे।

इन्द्र। इस समय इसकी सब चपलता क्षमा है।

(दमनक से) हां ! कुछ गा, जो तेरे जी में आवे)

दमनक । जो आज्ञा, सुनिए ।

राग यथारुचि ।

हम कहा कहैं, या सुख सरबस की बाता ।
मन मचल जात घूमै चक्करसा माथा ॥
सुधि बुधि बिसरी, सब गई बिथा कित भाई ।
जग में तजि नाता बनें, मूढ़ सौदाई ॥
झूला आवत है पेट, हरख न समाता ।
हम यों अचेत, ज्यों करै मौत से बाता ॥

(अप्सराओं की ओर देखकर)

मन के हजार टुकड़े होगए छटा से ।
घूमत हैं नैना इनके सुघर घटा से ॥
जो बिरह सची को सहै इन्द्र मन मारे ।
तो नित यह कौतुक दमनक आइ निहारे ॥

भरत । दुर, मूर्ख क्या बक रहा है ।

इन्द्र । (भरत से) इस समय इसे कुछ न कहिए, यह आनन्द में भरपूर डूब रहा है । (दमनक से) वाहरे, दमनक ! तेरे भोलेपन से हम बहुतही प्रसन्न हुए । ले मांग । अब क्या चाहता है ।

दमनक । (उछल कर बगल बजाता हुआ) आपकी जय होय । हे अप्सरा-मनरंजन । जो आप मुझपर प्रसन्न

हैं तो कृपा कर हमको भी स्वर्ग में दो अंगुल जगह दीजिए।

इन्द्र। ऐसाही होगा। पर अभी तू कुछ दिन मुनिवर भरताचार्य्य के पास रहकर संगीत और साहित्य विद्या में परिपक्क होले, फिर मर्त्यलोक छोड़ कर तू यहां आवेगा और गंधर्वों का राजा होकर सदैव नन्दन वन में अप्सराओं के साथ विहार किया करेगा। (रैवतक की ओर उंगली उठा कर) और यह तेरा सहचर रैवतक भी देवता होकर तेरा सहचरही बना रहेगा।

दमनक और रैवतक। (प्रणाम करके) सुरेश्वर की जय होय।

इन्द्र। (भरत से) आज जैसा अद्भुत कौतुक आपने दिखलाया, इसके रहस्य को कृपा कर अब प्रगट करिए कि क्योंकर शची की प्राप्ति हुई?

भरत। सुनिए। भगवती वागीश्वरी से नाट्यविद्या को पाकर हम इसी सोच विचार में उलझे हुए थे कि अब कौनसा रूपक दिखला कर इन्द्र को प्रसन्न किया जाय। इतनेही में हमने आकाश मार्ग से देवर्षि नारदजी के साथ शची को उतरते हुए देखा। बस फिर क्या था, हमने देवर्षि से अपना अभिप्राय कहा, उन्होंने भी उसे स्वीकार किया। फिर हमने बलि

का रूप धरा, रैवतक और दमनक नमुचि और वज्र-दंष्ट्र बने और जिस भांति नारदजी ने बलि के पास जाकर इन्द्राणी का उद्धार किया था, वही रूपक ज्यों का त्यों तुम्हें दिखलाया गया।

इन्द्र। ओहो! इसमें इतना जंजाल भराथा! तभी! अस्तु अब सब बात समझ में आगई। किन्तु हां यह तो बतलाइए कि दैत्यनारियां कौन बनी थीं?

भरत। स्वर्ग की अप्सराएं। अस्तु अब यह बतलाओ कि और क्योंकर हम तुम्हें प्रसन्न करें?

इन्द्र। मुनिवर! इससे बढ़कर हमारी प्रसन्नता और किससे होगी? तथापि यदि आप प्रसन्न और अनुकूल हैं तो दया कर यह वरदान दीजिए—

असत काव्य को छाड़ि, सबै कवितारस पागैं।
त्यागि भांड़ के खेल, राग रागिनि अनुरागैं॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, दुरजन सब भागैं।
मिलैं परस्पर सहित हेत सब जन हित लागैं॥
काव्य कला रत होहिं जग, तिमिर मानसिक मेटि तन।
सदा सरस पीयूष रस करैं पान लहि मानधन॥

और भी

नसै फूट, सब जन निजत्व को अब पहिचानैं।
त्यागि मूढ़ता, मोह, छोह सबहीं करि जानैं॥

विद्या, विनय, विवेक, बुद्धि, बल, वैभव, आनै।
पराधीनता मेटि, होंहिं स्वाधीन सयानै॥
करि उन्नति, अवनति परिहरैं, कुसल बनिज व्यापार में।
निज नाम उजागर करहिं जन, हिलि मिलि सब संसार में।

भरत। ईश्वरानुग्रह से ऐसाही होगा। और यदि सांसारिक जन नाटक विद्या पर पूर्ण श्रद्धा करके इसमें कुशल होंगे तो उन्हें सभी अभिलषित पदार्थ अनायास प्राप्त होंगे। क्योंकि नाटक की महिमाही ऐसी है। देखो:—

जैसी सुख सरिता बहै, नाटक माहिं सुजान।
वैसी सुखद, न वस्तु है, तीन लोक में आन॥

नारद। सत्य है। और हम भी नाटकप्रेमियों को कुछ वरदान देते हैं। वह यह कि "परस्पर विरोध रखनेवाली लक्ष्मी और सरस्वती, जिनका एकत्र अवस्थान अत्यन्त दुर्लभ है, नाटकप्रेमियों पर अनुग्रह करके परस्पर का वैमनस्य त्याग, सम्मिलित होकर उनके घर में निवास करें।

सब। देवर्षि के वचन अवश्य सत्य होंगे।

(धीरे धीरे परदा गिरता है)

इति

नाट्य सम्भव रूपक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥

विज्ञापन ।

हिन्दी भाषा के प्रेमियों को विदित हो कि आज चार वर्षों से "उपन्यास" नाम की "मासिक पुस्तक" बराबर छपा करती है। हिन्दी के अच्छे २ पत्रों और उपन्यास-प्रेमियों ने इसे सराहा है। मूल्य इसका दो रुपये साल सर्वत्र, डांक महसूल कुछ नहीं। नमूने का नम्बर चार आने के टिकट भेजने से ही भेजा जाता है। इसमें जब एक उपन्यास छपकर पूरा हो जाता है, तब दूसरा आरम्भ कर दिया जाता है। अब तक नीचे लिखे उपन्यास उक्त "मासिक पुस्तक" में पुस्तकाकार छप चुके और बिक रहे हैं,—

नाम उपन्यासों का	पृष्ठ संख्या	मूल्य	महसूल
(१) लीलावती	४७८	१।)	≈)
(२) राजकुमारी	२६४	॥।)	⁄)
(३) स्वर्गीयकुसुम	२७२	॥।)	⁄)
(४) प्रेममयी	५७	≡)	)॥
(५) कनककुसुम	५४	।)	)॥
(६) चपला (चार भागों में) ...	४८०	२)	।)
(७) हृदयहारिणी	११०	॥)	⁄)
(८) लवङ्गलता	११८	॥)	⁄)
(९) रज़ीया बेगम	१४०	॥≈)	⁄)
(१०) तारा (तीन हिस्सों में) ...	३६०	१॥)	≡)

ऊपर जो दसों उपन्यासों के नाम लिखे गए हैं, वे कैसे

मनोहर, अद्भुत, आश्चर्यजनक, कौतूहलवर्द्धक और प्रेम के सजीव चित्र से अङ्कित हैं, इस विषय में हम अपनी ओर से कुछ न कह कर केवल एक "तारा" उपन्यास पर जो सुप्रसिद्ध "सुदर्शन" सम्पादक श्रीयुत पण्डित माधवप्रसाद जी मिश्र ने अपनी निरपेक्ष सम्मति निज पत्र द्वारा प्रगट की है, उसी चीठी को हम नीचे छाप देते हैं, जिसे ध्यानपूर्वक पढ़ कर उपन्यास प्रेमी जन "स्थालीपुलाकन्यायेन" स्वयं इस बात का निर्णय कर लेंगे कि हमारे अन्यान्य उपन्यास भी कैसे होंगे।

श्रीयुत पंडित माधवप्रसादजी मिश्र के पत्र की पूरी नक़ल।

श्रीयुक्त पंडित किशोरीलाल गोस्वामी जी नमस्कार!

महाशय!

आपकी "तारा" के अवलोकन से जो मुझे आनन्द हुआ है उसे प्रकाश किये बिना रहा नहीं जाता। हिन्दी के इतिहास-रहित उपन्यासान्धकार में ज्योतिर्मयी "तारा" अपनी ओर रसिकों का चित्त आकर्षण करेगी, इसमें सन्देह नहीं। इसके तीसरे भाग में आती, राठौरनन्दिनी ताराबाई की उस पत्रिका के पाठ से, जो उसने शीशकुल राजसिंह के नाम से लिखी थी, आपकी काव्यकुशलता और मार्मिकता का भलीभांति परिचय मिलता है। इस प्रकार की ओजस्विनी एवं सरस कविता न केवल मनोविनोद ही का कारण है, प्रत्युत इससे आत्मविस्मृत देश का उपकार भी हो सकता है। मुझे भरोसा है कि यह पत्रिका हिन्दी साहित्य में प्रथम होने पर भी अन्तिम न होगी। इसी प्रकार और रचना भी देखने में आवेगी।

भवदीय—
माधवप्रसाद मिश्र।

☞ ये पुस्तकें नीचे लिखे ठिकानों पर मिलेंगी:—

श्रीकिशोरीलालगोस्वामी,
सम्पादक "उपन्यास" मासिक पुस्तक
ज्ञानवापी—बनारस।

मैनेजर लहरी प्रेस, का.शी और फ्रेज़र एण्ड कम्पनी, मथुरा।